

कौटिलीय अर्थशास्त्र

(एक अध्यायन)

देवदत्त शास्त्री



७
२/६

ता व म ह ल प्र का श न

330.1095 4

कौटलीय अर्थशास्त्र की भूमिका (एक अध्ययन)

देवदत्त शास्त्री



G 216

Agamnigam Library Lucknow

कि ता व म ह ल

इ ला हा बा द

प्रथमावृत्ति, १९५४

330.10954

अपनी ओर से

अपनी पुस्तकों के पाठकों और आलोचकों को मैं अपने से अधिक शोभ्य एवं बहुश्रुत समझता हूँ। इसीलिए किसी पुस्तक में मैं अपनी ओर से न तो लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखता हूँ और न किसी से लिखाने का आकर्षण रखता हूँ। श्री सत्यब्रह्म जी काव्यलोक के कार्ययोजक हैं, उन्होंने पुस्तक के प्रारंभ में जो सन्दर्भ लिखा है, उससे उन्होंने अपना कर्तव्य पालन करते हुए मेरे भी भार को कुछ हल्का कर दिया है। अपने पाठकों के प्रति मुझे इतना विश्वास अवश्य है, कि जिस तरह यह पुस्तक लिखकर मैंने आत्मसन्तोष का अनुभव किया है, उसी प्रकार उन्हें भी सन्तुष्टि के कुछ तत्त्व इस पुस्तक में अवश्य मिल जायेंगे।

प्रयाग

—देवदत्त शास्त्री

सन्दर्भ

प्रयाग के साहित्यिक प्रतिष्ठान काव्यलोक ने अपनी योजनाओं में साहित्य निर्माण योजना को प्रधान रूप से स्वीकार लिया है। काव्यलोक के प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह साहित्य निर्माण करे। इसी योजना के अन्तर्गत श्रीदेवदत्त शास्त्री को "कौटलीय अर्थशास्त्र का अनुवाद" और "भारतीय वाङ्मय की भूमिका" लिखने का कार्य सौंपा गया था। शास्त्रीजी ने इन दोनों पुस्तकों को प्रस्तुत कर साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

गतवर्ष भारत सरकार की ओर से कूटनैतिक राजदूतों के लिए एक नगरी दिल्ली में बसाई गई; जिसका नाम चाणक्य पुरी! रखा गया। इस नाम के आधार पर समाचारपत्रों में अनेक विवाद उपस्थित हुए। अधिकांश लोगों का मत था कि कौटिल्य! (कौटिल्य) कुटिलनीति का प्रसारक और एकतंत्र का समर्थक था। अतः इस नगरी का यह नाम चाणक्यपुरी न होना चाहिए। इस नाम के समर्थन में जो विचार व्यक्त किए गए थे, वे भी अधिकांश बुद्धिवादीतत्वों से रहित थे।

इस विचारणीय प्रश्न को लेकर दिसम्बर सन् १९५३ में काव्यलोक की एक परिसम्वादा गोष्ठी में इसी विषय पर विचार विनिमय हुआ। जिसमें श्रीदेवदत्त शास्त्री ने आचार्य कौटिल्य और उनके कौटलीय अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में अपने मौलिक किन्तु तर्कपूर्ण विचार व्यक्त किए; जो उनकी अध्ययनशीलता और अनुशीलन तथा चिन्तन प्रधान प्रवृत्ति के परिचायक थे। फलस्वरूप काव्यलोक की ओर से साहित्य निर्माण योजना के अन्तर्गत उन्हें एक अन्य पुस्तक लिखने का भार सौंपकर उनसे अनुरोध किया गया कि आप आचार्य कौटिल्य और उनके अर्थशास्त्र का

एक वैज्ञानिक किन्तु संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करें। परिणामस्वरूप कौटलीय अर्थशास्त्र की भूमिका नाम की यह पुस्तक लिखी गयी है।

कौटलीय अर्थशास्त्र की भूमिका एक आलोचनात्मक पुस्तक है। जिसमें आचार्य कौटल्य के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त किन्तु गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। डा० जोली से लेकर अब तक के इतिहासकारों ने कौटल्य और उनके अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं; उनमें मतवाद अधिक और निर्णय न्यून प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में जो भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं; यथासम्भव उन सबका निराकरण कौटलीय अर्थशास्त्र की भूमिका में किया गया है।

इस पुस्तक का सबसे महत्त्वपूर्ण और अनुसन्धान प्रधान विषय कौटल्य के व्यक्तित्व और उनके नाम तथा उपनामों एवं जीवन, जन्मभूमि सम्बन्धों मौलिक तथ्यपूर्ण विचार हैं। कौटल्य के नाम तथा उपनामों और उनके वृत्त एवं वृत्ति के सम्बन्ध में शताब्दियों से जो भयंकर भ्रान्तियाँ परम्परागत लिखित या मौखिक रूप में चली आ रही थीं; उन सबको युक्तियुक्त प्रमाणों; तर्कों द्वारा निराश्रित करके लेखक ने अपने मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया है। इन्हें हम अनुशीलन के नये सूत्र कहने में संकोच नहीं करेंगे। इस पुस्तक के अध्ययन से कौटल्य और उनके अर्थशास्त्र का महत्त्व जानने के साथ ही लोग कौटल्य को कौटिल्य कहने और आचार्य चाणक्य को कुटिलनीति का समर्थक मानने की भूल नहीं करेंगे।

पुस्तक के लेखक और प्रकाशक दोनों का ही यह सराहनीय प्रयास हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करेगा—ऐसा विश्वास है।

काव्यलोक

प्रयाग

—सत्यव्रत अवस्थी

एम० ए०

भारतीय अर्थशास्त्र की व्यापक भाव-भूमि

प्राचीन भारतीयशास्त्र किसी न किसी रूप में धर्म से अवश्य सम्बन्धित रहे हैं। यही कारण है कि वैदिक संस्कृति और धर्म अत्यन्त उदार और व्यापक रहे हैं और इन्हीं का परिणाम है भारत का व्यवित्तत्व कभी भी दबा नहीं। कितने ही तूफान आए, राज्यसत्ताएँ उलटों, नवीन राष्ट्र बने फिर भी भारत की आत्मा का पतन नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण हमारे देश की धार्मिक भावना अथवा परमतत्त्व को जानने की आकांक्षा ही है।

अन्य शास्त्रों की भाँति भारतीय अर्थशास्त्र का भी अन्तिम लक्ष्य मुक्ति ही रहा है। भारतीय आचार्यों ने अर्थशास्त्र की जो परिभाषाएँ निश्चित की हैं; उन्होंने उसकी जो प्रकृति निर्मित की है और तदनुकूल जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं; वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—जीवन के इन चारों फलों के देने वाले हैं। भारतीय अर्थशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। कौटिल्य वा अर्थशास्त्र इस परम्परा की अन्तिम परिणति है। अर्थशास्त्र की क्या परम्परा रही है, उसके कौन-कौन से आचार्य थे, अर्थशास्त्र की परिभाषा क्या है? इस शास्त्र का प्रयोजन क्या है, इससे मानव जीवन, समाज और राष्ट्र का कितना अभेद सम्बन्ध है तथा इसकी कितनी उपयोगिता है, इन सभी बातों का निराकरण कौटिलीय अर्थशास्त्र में किया गया है। फिर भी पूर्वी और पश्चिमी अर्थशास्त्रियों के मौलिक अन्तरों को समझने के लिए उसकी मूलप्रवृत्ति की जान लेना आवश्यक है।

पौराणिक और पाश्चात्य दोनों ही दृष्टिकोणों से अर्थ का तात्पर्य सम्पत्ति है। फिर भी दोनों दृष्टियों से अर्थ के उपयोग करने के भिन्न

भिन्न सिद्धान्त हैं। आर्य सभ्यता की प्रधान चार आधार शिलाओं में मोक्ष की ही भाँति अर्थ की भी प्रधानता है। अर्थ का ही दूसरा नाम सम्पत्ति है। यह अर्थ मोक्ष का प्रधान सहायक है। बिना अर्थ बुद्धि के मोक्ष या मुक्ति नहीं हो सकती। अर्थ का क्षेत्र मोक्ष और धर्म की अपेक्षा अधिक व्यापक माना गया है। जिस प्रकार आत्मा के लिए मोक्ष की, बुद्धि के लिए धर्म की और मन के लिए काम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर के लिए अर्थ की भी आवश्यकता होती है। मोक्ष और धर्म की आवश्यकता केवल मनुष्य ही को होती है; किन्तु अर्थ और काम के बिना तो मनुष्य, पशु, कीट-पतंग और तृण-पल्लव किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता। एक बार काम के बिना भी कार्य चल सकता है—मनोरंजन को त्यागा जा सकता है। लेकिन जिस अर्थ के ऊपर प्राणीमात्र के शरीर स्थिर हैं और प्राणीमात्र की जिन्दगी ठहरा हुआ है, उस अर्थ की प्रधानता का अनुमान सहज ही कर लेना चाहिए और उसकी भीमांसा बहुत ही सावधानी से करनी चाहिए; क्योंकि उसके अनुचित संग्रह से मोक्षमार्ग बिगड़ जाता है। आर्यों ने इसी दृष्टि से अर्थ के महत्त्व को स्वीकार किया था। यही कारण है कि आर्य सभ्यता में अर्थशास्त्र का क्षेत्र अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक व्यापक था। अर्थशास्त्र में राजनीति, धर्मनीति, आदि सभी नीतियों का समावेश हुआ है।

लेकिन आज का अर्थशास्त्र पश्चिमी दृष्टिकोणों से प्रभावित होने के कारण मुख्यतया सम्पत्तिशास्त्र सा बन गया है। योहान के अर्थशास्त्री-एक लम्बे अवधि तक अर्थशास्त्र को केवल धन का ही विज्ञान समझते रहे हैं। उनके मतानुसार अर्थशास्त्र एकमात्र सम्पत्ति शास्त्र ही माना जाता था। रॉस्किन ने यह स्पष्ट घोषित कर दिया था कि “अर्थशास्त्र जीवनशास्त्र है और जीवन ही एक मात्र धन है।” लेकिन इस परिभाषा में प्रयुक्त “जीवन” और “अर्थ” दोनों ही शब्दों का क्षेत्र व्यापक होने के स्थान पर अत्यन्त संकीर्ण है। यही कारण है कि पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों

ने अर्थशास्त्र को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित कर दिया है।^{१०}

पौर्वात्य और पाश्चात्य दृष्टिकोणों के मौलिक अन्तर को समझने के लिए हमें धार्मिक प्रवृत्तियों को जानना आवश्यक है। पश्चिमी देशों का धर्म एक मागी हुई वस्तु है—जो केवल आचार-विचार तक ही सीमित है। वहाँ धर्म छोड़ा और बदला जा सकता है; किन्तु आर्य संस्कृति में धर्म एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक धर्म में आचार, विचार धर्म के लिए साध्य वस्तु न होकर धर्म के साधन मात्र हैं। जीवन में परम कल्याण की प्राप्ति के लिए निरन्तर विकास करना ही आर्य धर्म है। इस प्रकार मनुष्य का उत्थान या विकास ही धर्म और पतन अथवा ह्रास ही अधर्म है। इस प्रकार अपनी व्यापकता के कारण वैदिक धर्म में मानव जीवन के साथ ही उसके तन, मन, प्राण और आत्मा तक में समाया हुआ है; जो न तो बदला ही जा सकता है और न छोड़ा हो जा सकता है।

यही कारण है पौर्वात्य दृष्टिकोण से मनुष्य अपनी सीमाओं के बन्धन नोड़ विकास की अन्तिम सीमाओं को छू लेना चाहता है; किन्तु पाश्चात्य दृष्टिकोण से मनुष्य एक सीमित क्षेत्र में ही विकास करता है। कार्ल मार्क्स ने पश्चिमी अर्थशास्त्रियों की अपेक्षा अर्थ को अधिक व्यापक रूप में ग्रहण किया है; यही कारण है कि उसके सिद्धान्त अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय और वैज्ञानिक हैं। लेकिन उसका अर्थशास्त्र भी भौतिक विकास के ही निमित्त साधनमात्र प्रतीत होता है। यही कारण है कि उसने जीवन की नितान्त भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं को सीमित कर दिया है। फलस्वरूप देशकाल के अन्तर से उसके सिद्धान्तों में भी अन्तर पड़ जाता है। उसके सिद्धान्तों को सार्वभौम सिद्धान्तों के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सकता है।

इसके विपरीत भारतीय अर्थशास्त्र जीवन की भौतिक और

आध्यात्मिक सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य-दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्रा है। वह मनुष्य को भौतिक आवश्यकताओं से मुक्ति पाने का उपाय बताते हुए अपने भौतिक सिद्धान्त स्थिर करता है। वह मानव-विकास के किसी मानव मन में असन्तोष का होना आवश्यक और संतोष को विकास के मार्ग में बाधक मानता है। इसके विपरीत भारतीय अध्यात्म मन की शान्ति और चिन्ताओं से मुक्ति पाने के लिए सन्तोष को परमसुख मानते हुए, लोक कल्याण की भावना से विकास के लिए प्रयत्न करना आवश्यक मानती है। इस प्रकार पश्चिमी अर्थशास्त्र व्यक्तिगत विकास का साधन है; किन्तु भारतीय अर्थशास्त्र व्यक्ति और समाज दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं करता।

पश्चिमी अर्थशास्त्री जिस मुक्ति की आकांक्षा करते हैं। वह भारतीय दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं। पश्चिमी दृष्टिकोण से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही मुक्ति है; किन्तु भारतीय दृष्टिकोण से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही भौतिक बन्धनों से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। इस प्रकार दोनों दृष्टिकोणों से अर्थशास्त्र का परम उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही भौतिक बन्धनों से छुटकारा पाना ही मुक्ति है; किन्तु पश्चिमी मतानुसार मुक्ति एक उद्देश्यसीमित विकास है; जबकि भारतीय अर्थशास्त्र मुक्ति को सीमाहीन विकास के रूप में ग्रहण करता है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्री अभी तक अर्थशास्त्र का स्वरूप नहीं निश्चित कर पाए हैं। अभी तक यह भी निश्चित नहीं किया जा सका कि अर्थशास्त्र की परिभाषा क्या है? उसकी सीमाएँ क्या हैं और उसकी परिणति क्या है? इन सभी समस्याओं के मूल में उनका सीमित दृष्टिकोण ही प्रधान कारण है; जिसकी वजह से वे अभी तक इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाये। फिर भी धीरे-धीरे वे भारतीय दृष्टिकोण के समीप आ रहे हैं।

पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों में मार्शल ही एक ऐसे थे, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों की कटु आलोचना की थी। उन्होंने कारलाइल और रस्किन की अर्थशास्त्र विरोधी आलोचनाओं का भी तर्क पूर्ण ढंग से खण्डन किया। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र मनुष्य के साधारण जीवन के सामान्य व्यवहारों का अध्ययन शास्त्र है; जिसका व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याणकारी भौतिक आवश्यकताओं की प्राप्ति और उपयोग से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

लेकिन मार्शल महोदय ने मनुष्य के असाधारण जीवन और विशेष व्यवहारों का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नहीं मानते। जो सर्वथा गलत है। प्रोफेसर पीगू ने अर्थशास्त्र को आर्थिक कल्याण का अध्ययन स्वीकार किया है। इनके विचार मार्शल के सिद्धान्तों से मेल खाते हैं फिर भी वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। अर्थशास्त्र सम्बन्धी उपर्युक्त परिभाषाएँ और सिद्धान्त भारतीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों और उसकी परिभाषाओं तक नहीं पहुँच पाते। साथ ही वर्तमान युग में जबकि जीवन का विस्तार क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया है—ये परिभाषाएँ और ये सिद्धान्त संकुचित से जान पड़ते हैं। इन परिभाषाओं और सिद्धान्तों से यही निष्कर्ष निकलता है कि अर्थशास्त्र वही शास्त्र है, जो मानव-समूह की एक निश्चित नपी-तुली क्रियाओं का अध्ययन और निरीक्षण करता है और वे क्रियाएँ वही हैं, जो भौतिक जीवन में धन नाम की वस्तु में समायी रहती हैं।

लेकिन इन सभी भ्रान्तिमूलक सिद्धान्तों को परे रखकर पाश्चात्य अर्थशास्त्री राविन्स ने अर्थशास्त्र को मानव विज्ञान घोषित किया है। उसके मत से अर्थशास्त्र मानव-व्यवहार का अध्ययन करता है, चाहे वह कहीं का भी हो और किसी का भी हो।

पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों का सर्वसम्मत सिद्धान्त एक यही है कि उपलब्ध वस्तुओं और साधनों से अधिकाधिक इच्छाओं की पूर्ति की जाए।

यही सन्तोष प्राप्ति का परम लक्ष्य है। अर्थशास्त्र का ऐसा दर्शन अथवा लक्ष्य जीवन को दुस्तर और विपन्न बनाया करता है। कहना न होगा कि इन्हीं सिद्धान्तों पर निर्भर आज का जन-जीवन दिन प्रति दिन जटिल से जटिलतर बनता जा रहा है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र पद्धति को अपना कर अपना मौलिक दृष्टिकोण व्यक्त करने वाले भारतीय अर्थशास्त्रियों ने पाश्चात्यों की अपेक्षा अर्थ-शास्त्र का स्वरूप एवं उसकी प्रकृति पहचानने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। प्रो० जे० के० मेहता ऐसे दृष्टिकोण व्यक्त करने में मौलिक और ख्याति प्राप्त हैं। प्रो० मेहता इच्छाओं को पीड़ा, भय, अनुभव-समझते हैं, इसीलिए उनका विश्वास है, कि सम्पूर्ण पीड़ा को पूरी तरह दूर करना असम्भव है।

वर्तमान भारतीय अर्थशास्त्रियों के मतानुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसके माध्यम से मनुष्य मात्र को अधिकतम संभव सन्तोष की उपलब्धि होती है।

यद्यपि अर्थशास्त्र सम्बन्धी यह परिभाषा और प्रकृति बहुत कुछ प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों और मतों से साम्य रखती है; किन्तु उनकी व्यापकता, सूक्ष्मता और शिव भावना का स्पर्श नहीं कर पाती।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मत से अर्थशास्त्र के निम्नांकित मूल आधार हैं:—

(१) उपभोग, (२) उत्पादन, (३) ग्राम और नगर की समस्याएँ, (४) विनिमय के सिद्धान्त, (५) वितरण के सिद्धान्त, (६) द्रव्य तथा विदेशी विनिमय, (७) साख तथा बैंकिंग, (८) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, (९) राजस्व, (१०) आर्थिक प्रगति।

वर्तमान अर्थशास्त्र की यह रूप-रेखा देखते हुए हमें यह कहना

पड़ता है कि अर्थशास्त्र के नाम पर इच्छाओं का व्यापार करना, भौतिकता को बढ़ावा देना और जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ाना तथा उनकी पूर्ति के लिए जिन्दगी भर करना—पचना, असन्तोष और अभाव की ज्वाला में धधकना मात्र है ।

- इसके वितरीत भारतीय आचार्यों ने अर्थशास्त्र की जो परिभाषा निश्चित की है, उन्होंने उसकी जो प्रकृति निर्मित की है और तदनु-कूल जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं—वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—जीवन के इन चारों फलों को देने वाले हैं । इसीलिए भारतीय
- अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी पश्चिमी अर्थशास्त्र की अपेक्षा अधिक व्यापक है ।
 - पश्चिमी दृष्टिकोणों से प्रभावित लोग तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि भारतीय अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी सीमित है; क्योंकि आज के युग ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति कर ली है । प्राचीन काल में जहाँ एकमात्र राजा का ही प्रभुत्व था, आज वहाँ पर प्रजा का राज्य है । इस प्रश्न के उत्तर में मैं उनसे विनम्रतापूर्वक कहूँगा कि शब्दों के आडम्बर में न पड़कर प्रत्येक वस्तु की मूल प्रवृत्ति को पहचानें और फिर कहें कि भारतीय अर्थशास्त्र में क्या कमी है ।

आज प्रजातन्त्र के नाम पर जो आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था की जा रही है; वह भारतीय अर्थशास्त्र के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं । प्राचीनकाल में साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य, आधिपत्यभूक, समन्तपर्यायी ये आठ प्रकार के राज्य शासन प्रचलित थे । ऐतरेय ब्राह्मण (सूत्र-काल में) काल में जानराज्य (जनराज्य) का भी प्रचलन हुआ । ये दोनों राज्यशासन भी वेद विहित हैं । इन सबका परम लक्ष्य जन कल्याण तथा पृथ्वी पालन ही था । जो आज की आदर्श राज्य व्यवस्था प्रजातन्त्र का लक्ष्य है ।

राज्य व्यवस्था भारतीय अर्थशास्त्र का एक अंग है । आज के अर्थशास्त्र के अनुसार भी राज्य (State) ही अर्थ व्यवस्था की मुख्य संस्था है । अतः यहाँ हम स्पष्ट देखते हैं कि भारतीय अर्थशास्त्रियों ने

पाश्चात्य अर्थ शास्त्रियों की अपेक्षा अधिक व्यापक दृष्टिकोण को बहुत पहले ही अपना रखा था। शासन के साथ-साथ शासन के चुनाव में भी विशेष सावधानी रखी जाती थी।

राष्ट्रपति का चुनाव करने से पूर्व व्यक्ति के लक्षण शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, अध्यात्म विज्ञान, व्यवहार विज्ञान और शास्त्रीय आदेशों के अनुसार मिलाये जाते थे। यजुर्वेद (१२।२२) के अनुसार राष्ट्रपति होने योग्य वही व्यक्ति है जो “श्रीणामुदारः (परीक्षित पदार्थों को देने वाला) जो, राज्य सम्पत्ति को सुरक्षित रख सके। किसी भी अवस्था में विचलित न होने वाली निर्णयात्मक बुद्धि उसमें हो, वह शान्ति का रक्षक हो, वसु नाम ब्रह्मचारी की भाँति ब्रह्मचर्य शक्ति का धनी हो, सहनशक्ति का पुत्र हो, प्राणों में प्रकाशमान हो, प्रभात की उषा के समान प्रतापी हो।”

इस प्रकार राष्ट्रपति के चुनाव के अनेक विधान कहे गए हैं। राष्ट्रपति पद के लिए व्यक्ति का निर्वाचन करने से पूर्व शास्त्र ज्ञान, बुद्धि ज्ञान से जब खूब सोच विचार कर लिया जाता था तब व्यक्ति को राष्ट्रपति पद पर आसीन किया जाता था। राष्ट्रपति को प्रजा की इच्छा से ही निर्वाचित किया जाता था। किसी भी एक व्यक्ति की असहमति से वह अयोग्य घोषित कर दिया जाता था। राष्ट्रपति के साथ ही उसके मंडल के निर्वाचन के भी अनेक नियम दिए गए हैं। इस प्रकार वर्तमान काल की राज्य व्यवस्था प्रजातंत्र भारतीयों के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। महात्मा गांधी ने भी अपनी आर्थिक दृष्टि से जिस राज्य की कल्पना की थी—उसे उन्होंने रामराज्य कहा था। वापू का रामराज्य और कुछ नहीं आज के प्रजातंत्र का वैज्ञानिक स्वरूप है। महात्मा गांधी ने जो आर्थिक विचार व्यक्त किए हैं। वे भारतीय अर्थशास्त्र के अनुरूप ही हैं। सहकारी योजना तो भारत के लिए अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग में ही सहकारिता के इस भाव को हमारे

मनीषियों ने इस रूप में व्यक्त किया है—सहनाववतु, सहनौ भुनक्तु सहकार्यं करवावहे ।

यही सहकारिता का भाव पल्लवित होकर भारतीय अर्थशास्त्र में विकसित हुआ है। इसी आधार पर कौटिल्य ने अर्थशास्त्र का अर्थ करते हुए लिखा है (अधिकरण १५ अ० १ सूत्र १।३)—मनुष्यों की वृत्ति (जीविका या जीवनचर्या) ही अर्थ है। अर्थात् मनुष्यों की जीविका और उस जीविका के साधन पृथ्वी के लाभ और पालन का उपाय-रूप शास्त्र अर्थशास्त्र है। पश्चिमी अर्थशास्त्र जहाँ जीवन के एकांगी दृष्टिकोण को अपनाकर अपने क्षेत्र को एकमात्र सम्पत्ति तक ही सीमित करता है, वहीं भारतीय अर्थशास्त्र जीविका और पृथ्वी व्यापार, तमाम लाभों और विधानों को अपने अन्तर्गत समेट लेता है ।

उपयोग, उत्पादन, ग्राम और नगर की समस्याएँ, विनिमय के राजस्व तथा आर्थिक उन्नति के अतिरिक्त भारतीय अर्थशास्त्र राजा के प्रति राज कर्मचारियों के कर्त्तव्य तथा विश्वासघाती कर्मचारियों के प्रतीकार के उपाय, शत्रुराष्ट्रों के वश में करने के उपाय राज्य की विपत्तियों के कारण तथा उन्हें शान्त करने के उपाय आदि अनेक जीवन सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। आज का अर्थशास्त्र और राजनीति दोनों मिलकर भी भारतीय अर्थशास्त्र की सीमाओं को छूते में सर्वथा असमर्थ हैं ।

आज अर्थशास्त्र दो भिन्न-रूपों में देखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति राज्य (State) से स्वतन्त्र रूप में अपनी आर्थिक समस्याओं को सुलझाता है। किन्तु भारतीय अर्थशास्त्र शासित और शासक दोनों ही वर्गों को एकता के सूत्र में बाँधकर चलता है। फलस्वरूप राष्ट्र की आर्थिक स्थिति राजा और प्रजा दोनों पर ही निर्भर करती है और कभी नहीं बिगड़ती ।

आधुनिक मनोविज्ञान भी अर्थशास्त्र का एक अंग रहा है; जबकि आधुनिक अर्थशास्त्र में मनोविज्ञान का स्थान होते हुए भी उसका अर्थ-

शास्त्र के लिए कोई महत्त्व नहीं है। प्रचलित प्रथाओं के अनुसार कौटल्य आदि भारतीय आचार्यों ने मनोवैज्ञानिक स्थिति को समझकर जीवन-सम्बन्धी अनेक विधान बनाए हैं। क्योंकि वे जानते थे कि किसी कारण मन में अशान्ति उत्पन्न होने से राष्ट्रीय उत्पादन शक्ति का ह्रास हो जाता है।

कौटल्य ने काम शुद्धि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सामाजिक जीवन का विधान प्रस्तुत किया है। कौटल्य का मत है—“थोड़े समय के लिए बाहर जाने वाले शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तक तथा पुत्रवती इससे अधिक समय तक उनके (यानी पति के) आने की प्रतीक्षा करें। यदि पति उनकी जीविका का प्रबन्ध कर गए हों तो वे दुगुने समय तक उनकी प्रतीक्षा करें। और जिनके भोजनाच्छादन का प्रबन्ध न हो, उनका उनके समृद्ध बन्धु-बान्धव चार या अठन्ध वर्ष तक पालन पोषण करें। इसके बाद प्रथम विवाह में दिए हुए धन को वापस लेकर दूसरे विवाह के लिए अनुमति दे दें। पढ़ने के लिए बाहर गए हुए ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दस वर्ष तक और पुत्रवती बारह वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करें। यदि कोई व्यक्ति राजा के किसी कार्य से बाहर गया हो, तो आयु पर्यन्त उसकी स्त्री उसकी प्रतीक्षा करें। यदि समान वर्ण के पुरुष से स्त्री के वच्चा पैदा हो जाय तो वह निन्दनीय नहीं।”

उपर्युक्त उद्धरण के प्रारम्भ के कुछ वाक्य तथा अन्तिम वाक्य से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि पति के परदेश जाने पर स्त्रियों पुरुष से काम पूर्ति करा लेना अनुचित नहीं है। केवल अर्थशास्त्र के आधार पर निश्चित रूप से यह कहना ठीक नहीं कि ऐसी प्रथा उस समय में थी। तथापि कौटल्य के मतानुसार संकटावस्था में अन्य सवर्ण पुरुष से काम शान्ति करा लेना अनुचित नहीं। इतना ही नहीं कौटल्य ने आगे चलकर कहा है—कि ऋतु काल में उपरोध होना (यानी ऋतुकाल में पुरुष का संग न होना) धर्म के नाश हो जाने के बराबर है।”

आज के मनोविज्ञान ने कामशास्त्र को काफी महत्त्व दे रखा है। फिर भी आज के मनोवैज्ञानिक उसकी पूर्ति और शान्ति का कोई वैज्ञानिक विधान नहीं बना पाए। हमारे भारतीय अर्थशास्त्रियों ने जीवन की प्रत्येक मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त उसका वैज्ञानिक विधान बना दिया है। इस प्रकार उन्होंने जीवन के सन्तुलन को कायम रखने के लिए किसी भी दृष्टि से जीवन की किसी भी समस्या की उपेक्षा नहीं की। राज्यकर्मचारियों तथा गुप्तचरों की नियुक्ति के लिए भारतीय अर्थशास्त्रियों ने ज्योतिष, मनोविज्ञान आदि सभी उपयोगी विज्ञानों की सहायता ली है। इसके विपरीत आधुनिक अर्थ-शास्त्र, धन के उपभोग और उपभोग के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित विषयों की विवेचना नहीं करता। इस प्रकार आज का अर्थशास्त्र ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक दृष्टि से भारतीय अर्थशास्त्र की अपेक्षा सीमित है।

प्रत्येक दृष्टि से भारतीय अर्थशास्त्र आधुनिक अर्थशास्त्र की अपेक्षा अधिक व्यापक और वैज्ञानिक है। क्योंकि वह जीवन की प्रत्येक समस्या का सभी दृष्टियों से समाधान उपस्थित करता है। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र जीवन के एकांगी पहलू (आर्थिक) को ही लेकर चलता है और उसके समाधान प्रस्तुत करने में अन्य शास्त्रों की उपेक्षा करता है। वस्तुतः आज का अर्थशास्त्री अर्थ-शास्त्र को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने के लिए उसे अन्य शास्त्रों से अलग रखकर उसका अध्ययन करना चाहता है। इससे उसकी व्यापकता सीमित होती जा रही है। इसके विपरीत भारतीय अर्थशास्त्री—अर्थशास्त्र के साथ ही अन्य शास्त्रों को भी लेकर उसकी महत्ता सिद्ध करता है। फलतः प्रत्येक शास्त्र का ज्ञान अर्थशास्त्र की समस्याओं का समाधान उपस्थित करने का साधन बन उसकी सीमा का विस्तार करता है। अतः आज के इस युग में भारतीय अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन की निरन्तर आवश्यकता है। क्योंकि आज के लेखक और पाठक वैज्ञानिकता के नाम पर अपने ज्ञान को भी सीमित

करते जा रहे हैं। यहाँ तक कि विज्ञान को भी सीमित दृष्टि से ही देखने के आदी हो गए हैं। ऐसी स्थिति में यदि वे भारतीय अर्थशास्त्र को अवैज्ञानिक मानकर भी पढ़ेंगे, तो उनकी बुद्धि का विकास होगा। साथ ही विचारों की सीमा के विस्तार के साथ ही तर्क बुद्धि भी विकसित होगी।

कौटलीय अर्थशास्त्र और उसका रचयिता

अर्थशास्त्र की परम्परा

धार्मिक वाङ्मय की भांति अर्थ के वाङ्मय का भी अत्यन्त विस्तृत और स्वतंत्र क्षेत्र है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२, ५।१०।१४) में धर्म और अर्थ में कुशल राजपुरोहित का उल्लेख है। धर्मसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धर्म या विधान ही है, किन्तु अर्थशास्त्र में सभी आर्थिक सिद्धान्तों और नियमों का विवेचन है। अर्थशास्त्र का मुख्य विषय राजनीति ही है। मानव मात्र के समस्त लौकिक कल्याणों का स्वरूप अर्थशास्त्र के अन्तर्गत निहित है। कौटलीय अर्थशास्त्र में कौटल्य ने अपने पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र के अठारह आचार्यों और सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इससे जान पड़ता है, कि महाजानपद युग से पूर्व नन्दयुग तक अर्थशास्त्र की मान्यता और सत्ता स्वतन्त्र विद्या के रूप में धर्मशास्त्र के तुल्य मानी जा चुकी थी। अर्थशास्त्र के जिन प्राचीन आचार्यों के उद्धरण कौटलीय अर्थशास्त्र में पाये जाते हैं, उनसे यह अनुमान होता है, कि अर्थशास्त्र की स्वतन्त्र स्थापना ७०० ई० पूर्व हुई होगी। मनु, बृहस्पति और उशना के सम्प्रदायाचार्यों का मत व्यक्त करते हुए कौटल्य ने आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति इन चार विद्याओं का जो विवेचन “कौटलीय अर्थशास्त्र” (अधिकरण १ अध्याय २ प्रकरण १ सूत्र १, १२) में किया है, उससे उसके पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र के आचार्यों के मस्तिष्क में अपने समकालिक ज्ञान के विस्तार का अन्दाज लग जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि उस समय त्रयी “वैदिक वाङ्मय” के अतिरिक्त दर्शन, तर्क-शास्त्र तथा अनेक लौकिकज्ञान जीवन के अभ्यास और प्रयोग के साधन बने हुए थे। पृथ्वी को प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा करने के लिए प्राचीन

आचार्यों ने जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं, प्रायः उन सब को संगृहीत कर कौटल्य ने कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना की है। (अधिकरण १ सूत्र १, २) इसमें निम्नांकित पन्द्रह अधिकरण हैं:

१—विनयाधिकरण—इसमें राजा के विनय (राज काज में राजा का सामान्य व्यवहार) का निरूपण किया गया है।

३—अध्यक्ष प्रचार—इसमें शासन के मुख्य-मुख्य अध्यक्षों के कर्तव्य और उनके विभिन्न विभागों का निरूपण है।

३—धर्मस्थीय—इसमें धर्मशास्त्र के अनुसार मामलों, मुकदमों के फैसले का निरूपण किया गया है।

४—कण्टकशोधन—इस अधिकरण में समाज के लिए कंटक बने हुए लोगों को दंड देने के ढंग और नियम बताए गए हैं।

५—योगवृत्त—इस अधिकरण में राजा के प्रति राजकर्मचारियों के कर्तव्य तथा विश्वासघाती कर्मचारियों के प्रतीकार के उपाय बताए गए हैं।

६—मंडलयोनि—इस अधिकरण में शत्रुराष्ट्रों को वश में करने के उपाय बताए गए हैं।

७—षाड्गुण्य—इस अधिकरण में शत्रुओं के प्रतीकार के लिए उपाय बताए गए हैं।

८—व्यसनाधिकारिक—इस अधिकरण में राज्य की विपत्तियों के मूल कारण तथा उन्हें शान्त करने के उपाय बताए गए हैं।

९—अभियास्यत्कर्म—इस अधिकरण में विजय के निमित्त प्रस्थान करने से पूर्व विचारणीय विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

१०—सांग्रहिक—इस अधिकरण में विजय के निमित्त युद्ध सम्बन्धी नियमों का वर्णन किया गया है।

११—संग्रहवृत्त—इस अधिकरण में संघ राज्यों में फूट डालने के उपाय बताए गए हैं।

- १२—अबलीयस—इस अधिकरण में दुर्बल राजाओं द्वारा प्रबल राजाओं के प्रतीकार के उपाय बताए गए हैं।
- १३—दुर्गलम्भोपाय—इस अधिकरण में शत्रु के किलों पर अधिकार करने के उपाय बताए गए हैं।
- १४—औपनिषद्क—इस अधिकरण में गुप्तरूप से शत्रु पर विष, जादू, टोना, टोटका आदि का प्रयोग कर उसपर विजय प्राप्त करने के उपाय बताए गए हैं।
- १५—तन्त्रयुक्ति—इस अधिकरण में अर्थशास्त्र का अर्थ और ३२ युक्तियों के नाम तथा उनके अर्थ बताए गए हैं।
- इस अर्थशास्त्र में १५० अध्याय, १८० प्रकरण और ६ हजार सूत्र हैं।

कौटलीय अर्थशास्त्र के अर्थ का लक्षण

कौटल्य ने अर्थशास्त्र का अर्थ करते हुए लिखा है (अधिकरण १५ अ० १ सूत्र १, ३) कि मनुष्यों की वृत्ति (जीविका या जीवनचर्या) ही अर्थ है। अर्थात् मनुष्यों की जीविका और उस जीविका के साधन उस पृथ्वी के लाभ और पालन का उपायरूप शास्त्र अर्थशास्त्र है।

रचनाकाल]

कौटलीय अर्थशास्त्र का रचना काल एक प्रकार से अब तक विवाद-ग्रस्त है। डा० जोली ने सर्व प्रथम यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि यह ग्रन्थ ईस्वी तीसरी शती में लिखा गया है। उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में वीस तर्क प्रस्तुत किए हैं, जिनके उत्तर में डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दिए गए अपने 'टैगोर व्याख्यानों' द्वारा एक-एक का खंडन किया है। जोली और डॉ० जायसवाल के विचारों को प्रकाशित हुए एक जमाना हो गया है। फिर भी जब तक कोई नया मत, नया निर्णय स्थिर नहीं होता, तब तक वे भी विचार्य और गाह्य हो सकते हैं। डॉ० जायसवाल ने जिन तर्कों और प्रमाणों द्वारा जोली के मतों का खंडन किया है, वे सभी मान्य और मूल्यवान्

समझे जा रहे हैं, पर उनके कुछ विचारों और तर्कों से हमारा मतभेद है।

(१) डॉ० जोली का कहना है, कि धर्मों और कानूनों के संबंध में कौटलीय अर्थशास्त्र और याज्ञवल्क्य स्मृति में बहुत अधिक समानता है। इसलिये कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना याज्ञवल्क्य स्मृति के रचना-काल ईस्वी तीसरी शती में अवश्य हुई होगी।

डॉ० जायसवाल ने इस दलील का खंडन करते हुए लिखा है, कि “यह कथन बहुत सत्य है, कि धर्मों का कानूनों आदि के संबंध में याज्ञवल्क्य और कौटल्य में बहुत अधिक समानता है। कौटल्य ने एक शब्द ‘युक्त’ का व्यवहार किया है, जिसका अर्थ अधिकारी या अफसर है और जो अशोक के शिलालेख में ‘युत’ रूप में आया है। जब तक अर्थशास्त्र प्रकाशित नहीं हुआ था तब तक इस ‘युत’ शब्द का अर्थ कोई समझ नहीं सका था। क्योंकि अर्थशास्त्र के बाद के साहित्य में इस शब्द का व्यवहार विलकुल ही उठ गया था। अर्थशास्त्र में जिस ‘युत’ शब्द का व्यवहार हुआ है वह अर्थ याज्ञवल्क्य की समझ में ही नहीं आया था। उसने ‘युक्त’ शब्द के स्थान पर ‘योग्य’ ‘उचित’ या “वाचिक” शब्द का व्यवहार किया है। याज्ञवल्क्य ने कौटल्य के दिए हुए नियमों को पद्यबद्ध किया है और वह कई स्थानों पर उसका ठीक ठीक अभिप्राय नहीं समझ सका..... इससे यह सिद्ध होता है, कि अर्थशास्त्र का समय ईस्वी दूसरी, तीसरी शताब्दी से कुछ शताब्दियों पूर्व होना चाहिए। (हिन्दू राज्यतन्त्र पृ० ३४०, ३४२)।

हमारी धारणा है, कि कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना शैली प्राचीन बौधायन, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रों से मिलती है। यही कारण है, कि कौटल्य द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों के प्रयोग पूर्ववर्ती और परवर्ती संस्कृत साहित्य में नहीं हुए हैं। याज्ञवल्क्य ने यदि ‘युक्त’ के स्थान पर ‘अयोग्य’ शब्द का व्यवहार किया है, तो यह उनकी नासमझी नहीं थी, बल्कि जमाने का तकाजा था। उस समय ‘युक्त’ का व्यवहार बदलकर अयोग्य हो गया होगा। भाषाविज्ञान के सिद्धान्त के आधार पर जैसे शब्द

घिसते हैं, बढ़ते हैं, उसी प्रकार उनके प्रयोग और अर्थ भी अपना रूप बदलते हैं। याज्ञवल्क्य के जमाने में अर्थशास्त्र के जो पारिभाषिक शब्द जनग्राह्य थे उन्हें उन्होंने अपनाया था जैसे—

अर्थशास्त्र

याज्ञवल्क्यस्मृति

१. द्विनेत्रभेदिनः राजद्विष्टामादिश- द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्यदेशकृतस्तथा ।

तोशूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो अष्टशतो विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोष्ट
दंडः पणोदयः (२।२४३)

२. भ्रातृभार्या हस्तेन लङ्घयतो संदि भ्रातृभार्या प्रहारदः सन्दिष्टचा-
ष्टमर्थं प्रयच्छतो समुद्रगृहमुद्भि- प्रदाता च समुद्रगृह भेदकृत्
दन्तः (२२।३२)

‘अर्थशास्त्र लिखे जाने के बाद बहुत दिनों तक वह प्रचलित या प्रकाशित नहीं हुआ होगा’, डा० जायसवाल का यह कथन युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। क्योंकि कौटल्य के समकालिक वात्स्यायन ने अर्थशास्त्र के ही आधार पर कामन्दक नीतिसार ग्रन्थ लिखा था। यह इतना जनप्रिय ग्रन्थ था कि इसवी चौथी शती में जो भारतीय जावा में जाकर बस गए थे, अपने साथ ‘कामन्दक नीति’ भी लेते गए थे। कौटलीय अर्थशास्त्र के पठन-पाठन और आलोचन की परम्परा वात्स्यायन से लेकर विशाखदत्त (मुद्राराक्षस) विष्णुशर्मा ‘पंचतन्त्र’ सोमदेवसूरि (राजा यशोधर का समकालीन) दंडी (दशकुमार चरित) वाणभट्ट (कदम्बरी, हर्षचरित) मिल्लनाथसूरि (रघुवंश की टीका) तक बराबर मिलती है। कौटलीय अर्थशास्त्र मिल्लनार्थ और याज्ञवल्क्य के नियम और वर्णन का साम्य देखकर डा० जोली को यह भ्रम हो गया था कि अर्थशास्त्र इसवी तीसरी शती की रचना है, लेकिन यदि कामन्दक नीति से लेकर मिल्लनाथ तक के वर्णन-साम्य मिलाये जायें तो कौटलीय अर्थशास्त्र या तो गोरखवन्धा ही मान लिया जाय या आचार्य कौटि का प्रामाणिक ग्रन्थ। जैसे,

नीतिशास्त्रामृतं धीमान् अर्थशास्त्रमहोदधेः ।

समुद्घ्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय देवसे ।

दर्शनात्तस्य मुदृशो विद्यानां पारदृश्वनः

यत्किंचिदुपदेक्ष्यामः राजविद्याविदांमतम् (कामन्दक नीतिसार)
अर्थात्, अर्थशास्त्र समुद्र से नीतिशास्त्र अमृत निकालने वाले विष्णुगुप्त को
नमस्कार है। मैं जो कुछ भी उपदेश कहूँगा वह सब इन्हीं का मत है।

विष्णुगुप्त ने पंचतंत्र प्रारम्भ करते हुए लिखा है—

“धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि। अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि। काम-
शास्त्राणि वात्स्यायनादीनि।”

धर्मशास्त्र से तात्पर्य मनु आदि, अर्थशास्त्र से तात्पर्य चाणक्य आदि
और कामशास्त्र से तात्पर्य वात्स्यायन आदि।

अर्थशास्त्र को पढ़ने की राय देते हुए दंडी ने लिखा है :

‘अधीष्व तावद्वंडनीतिम्। इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे
पड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता सैवेयमधीत्य सम्यग्नुष्ठीयमाना यथोक्त-
कार्यक्षमेति।

आचार्य विष्णुगुप्त द्वारा मौर्य के लिए ६ हजार श्लोकों में संक्षेप
से लिखी गयी दंड नीति पढ़ो। यदि वह उत्तम रीति से पढ़ी जाय तो
उससे यथेष्ट फल मिले।

इतना ही नहीं, दशकुमार चरित के अनेक स्थल कौटलीय अर्थशास्त्र
के समान हैं :

कौटलीय अर्थशास्त्र

दशकुमार चरित

१. द्वितीये पौरजानपदानांकार्याणि- द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां तृतीये
पश्येत् तृतीये स्नानं भोजनं सेवेत, स्नातुं भोक्तुं चतुर्थे हिरण्यं प्रति-
स्वाध्यायं च कुर्वीत चतुर्थे हिरण्यं ग्रहाय।

प्रति ग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत

(“अधिकरण १ अ० १९”)

२. दिवसस्याष्टमे भागे रक्षातिधान- कृत्स्नमायव्ययं जातमह्नः प्रथमेष्टमे
मीयव्ययी च शृणुयात् (वही) भागे श्रोतव्यम्।

सोमदेव सूरि ने भी याज्ञवल्क्य स्मृति की भांति नीति वाक्यामृत

लिखा है। कौटलीय अर्थशास्त्र और 'नीतिवाक्यामृत' में भी वर्णों और विषयों का साम्य है। जैसे:

कौटलीय अर्थशास्त्र

नीतिवाक्यामृत

१. ज्ञान बलं मंत्र शक्तिः। कोशदंड ज्ञानबलमंत्रशक्तिः। शशकेनेव-
बलंप्रभुशक्तिः। विक्रम बलमुत्साह सिंहव्यापादनमंत्रदृष्टान्तः। कोश-
शक्तिः। दंडबलंप्रभुशक्तिः। शूद्रकशक्तिकुमार-
(अधिकरण ६ अ० २ सूत्र ४३, दृष्टान्तः। विक्रमबलमुत्साहशक्तिः।
४४। ४५।)

तत्र रामो दृष्टान्तः।

(२९। ११४। ११५)

कामसूत्र का तो प्रकरण विभाग ही कौटलीय अर्थशास्त्र के आधार पर है :

कौटलीय अर्थशास्त्र

कामसूत्र

- | | |
|------------------------|------------------------|
| १. अर्थोऽर्थानुबन्धः | १. अर्थोऽर्थानुबन्धः |
| २. अर्थोनिरनुबन्धः | २. अर्थोनिरनुबन्धः |
| ३. अर्थोऽनर्थानुबन्धः | ३. अर्थोऽनर्थानुबन्धः |
| ४. अनर्थोऽर्थानुबन्धः | ४. अनर्थोऽर्थानुबन्धः |
| ५. अनर्थोनिरनुबन्धः | ५. अनर्थोनिरनुबन्धः |
| ६. अनर्थोऽनर्थानुबन्धः | ६. अनर्थोऽनर्थानुबन्धः |

(अधिकरण ९ अ० ७ सूत्र ११४-१९)

(कामसूत्र ६-६)

रघुवंश की टीका में मल्लिनाथ ने यत्र-तत्र कौटलीयसूत्रों को अपनाया है और रघुवंश के रचयिता कालिदास ने अर्थशास्त्र के मृगयाविधान को अभिज्ञानशाकुन्तल में अपनाया है:—

कौटलीय अर्थशास्त्र

रघुवंश की टीका

- | | |
|---|---|
| १. आपदां नियोगविकल्पसमुच्चया-
भवन्ति। अनेनैवोपायेन नान्येनेतिनि-
योगः अनेन वान्येन नेतिविकल्पः। | १. कार्याणां नियोग विकल्पसमुच्चया
भवन्ति। अनेनैवोपायेन नान्येने
तिनियोगः। अनेन वान्येननेति- |
|---|---|

अनेनान्येनचेति समुच्चयः ।

(अधिकरण १० अ० ७)

२. क्षीणः प्रकृतयः लोभंलुब्धाः या-
न्तिविरागताम् । विरक्तयान्तं मित्रं
वाभर्तारुन्धन्तिवास्वयम् ।

(अधिकरण १७ अ० ५५)

अर्थशास्त्र

१. मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्म-
पित्तमेदः स्वेदनाशश्चले स्थिते
चकलक्षयार्थपरिचयः कोपभयस्थाने-
हितेषुच मृगाणां चित्त ज्ञानमनि-
त्यज्ञानं चेति

(८०३।५०)

उपर्युक्त समता सूचक इन उद्धरणों से अर्थशास्त्र की अविच्छिन्न प्रम्परा के इतिहास का बोध होता है न कि उसकी नवीनता का । इसलिए याज्ञवल्क्य-स्मृति का अर्थशास्त्र से साम्य देखकर डा० जोली ने जो अर्थशास्त्र की रचना का समय तीसरी ईसवी शताब्दी माना है, वह उनका केवल भ्रम ही रहा है । डा० काशी प्रसाद जायसवाल ने भी जोली की दलीलों का खंडन करते हुए लोपापोती की है । उनका भी यह अनुमान भ्रमपूर्ण है, कि अर्थशास्त्र बहुत दिनों तक अप्रकाशित रहा होगा । हम देखते हैं, कि कौटिलीय अर्थशास्त्र के सिद्धान्त सभी परवर्ती संस्कृत, पाली, प्राकृत भाषाओं के अर्थशास्त्र में प्रकृत रूप से विद्यमान हैं । आसमुद्रपर्यन्त एक राष्ट्र कायम करने का दृष्टिकोण रखकर ही कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की है जो हर समय, हर युग के लिए उपादेय है । हाँ, यह ठीक है कि बौद्धकाल में

विकल्पः । अनेनान्येनचेति समुच्चयः

(सर्ग १७ श्लोक ४९):

२. क्षीणः प्रकृतयः लोभंलुब्धाः
यान्ति विरागताम् । विरक्ता-
यान्ति मित्रं वा भर्तारुन्धन्तिवा-
स्वयम् ।

(सर्ग १२ श्लोक ५५)

अभिज्ञान शाकुन्तल

१. भेदश्छेद कृशोदरंलघुभवत्यु-
त्साहयोग्यंवपुः सत्वानामतिलक्ष्य-
तेविकृतिमच्चित्तंभयक्रोधयो-
स्तर्कः सचधन्विनां यदिषवः सि-
द्ध्यन्ति लक्ष्येचले ।

मिथ्याहि व्यसनं वर्द्धन्ति मृगया-
मोदृग्विनोदःकुतः ।

(द्वितीयअंक श्लोक ५)

सामाजिक दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाने पर कौटल्य और उसके अर्थशास्त्र-की निन्दा भी बहुत अधिक हुई है, और अब भी कौटल्य को कुटिल, साम्राज्यवादी और ध्वंसात्मक प्रवृत्तिवाला कहा जाता है। जब कि वत्तमान पाश्चात्य राजनीतिज्ञ कौटल्य के किए और बताये हुए कार्यों, नियमों और सिद्धान्तों से चार कदम आगे ही हैं।

बौद्ध जातकों, जैन पुराणों और आगमों में कौटल्य को तो बुरा कहा ही गया है, महाकवि वाण ने भी उस पर अच्छा खासा व्यंग्य किया है:—

‘किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसं प्रायोपदेशे निधृणं कौटल्यं शास्त्रं प्रमाणम् । अभिचार क्रियाकूरकप्रकृतयः । पुरोधसां गुरवः । परातिसंधान परा मंत्रिणः उपदेष्टारः । नरपति सहस्रमुज्झितायां लक्ष्म्यामासवितः । मरणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः । सहजप्रमार्द्र हृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः ।

अर्थात् : उन लोगों को क्या कहा जाय जो इस समय अति घृणित कार्य को उचित बताने वाले कौटलीय अर्थशास्त्र को प्रमाण मानते हैं। जिनकी प्रकृतियाँ, अभिचार, मारण, मोहन उच्चाटन आदि प्रयोगों को करने के कारण क्रूर हैं, जिनके गुरु, पुरोहित और अमात्य दूसरों को धोखा देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। जिनके लिए हजारों राजाओं से परित्यक्त राजलक्ष्मी ही सब कुछ है। जो मारणात्मक शास्त्रों का प्रयोग करते हैं, सहज आर्द्र होने वाले भाई को भी मार डालते हैं।

इस कटु आलोचना का कारण बौद्ध और जैन धर्मों द्वारा प्रचारित ब्राह्मण धर्म का विरोध ही है। कौटल्य वैदिक धर्म की शक्ति परम्परा के अनुयायी और पोषक थे। जिसके विरोध में बौद्ध और जैन धर्मों के सिद्धांत स्थिर हुए हैं।

१. कौटल्य ने मंत्रों और औषधियों के प्रयोग औपनिषदिकप्रकरण में चातुर्वर्ण्य की रक्षा के लिए अधार्मिक पुरुषों में करने के लिए कहा है। (अधिकरण १४ अ० १ सूत्र १)

२. ऐसे मारक योगों के प्रयोग स्वजनों की रक्षा के निमित्त शत्रुओं पर करने के लिए लिखा है (अधिकरण १४ अ० ४ सूत्र ९६)

३. उसकी राजनीति जनता को अर्थ, धर्म, काम में प्रवृत्त करने की, उसकी रक्षा करने और अर्थ के विरोधी अधर्मों को नष्ट करने के लिए है। (अधिकरण १५ अ० १ सूत्र ७९)

४. कौटिल्य शास्त्र के अनुकूल लोकव्यवहार चलाने का समर्थक था (शास्त्र प्रधाना लोक वृत्तिः)

५. शास्त्र के अभाव में वह सदाचारी पुरुष का अनुगमन करने की सलाह देता है। उसकी दृष्टि में सदाचार से बढ़कर शास्त्र नहीं होता है। (शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् नाचरिताच्छास्त्रंगरीयः)

६. वह इन्द्रिय निग्रह को ही तपस्या का सार मानता था। (तपः सारं इन्द्रियनिग्रहः)

७. उसके अर्थशास्त्र का प्रयोजन तत्त्वदर्शन है (शास्त्र प्रयोजनं तत्त्व दर्शनम्)

८. वह न्यायो और जन सम्पर्क स्थापित रखने वाले राजा को श्रेष्ठ समझता था। (न्याय युक्तं राजानं भर्तारं मन्यन्ते प्रजाः, सुदर्शनाः राजानः प्रजां रंजयन्ति)

९. उसकी दृष्टि में अहिंसा ही मुख्य धर्म है (अहिंसालक्षणो धर्मः)

१०. उसने मांस खाना सब के लिए अनुचित कहा है (मांसभक्षणमयु-क्तांसर्वेषाम्)

११. उसने ज्ञान द्वारा संसार भर के भय को दूर करने की घोषणा की है, तलवार या जोर जुल्म से नहीं (ज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते)

१२. उसने तपस्या और क्षमा को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। (तपसा स्वर्गमाप्नोति, क्षमायुक्तस्य तपो विवर्द्धते)

सारांश यह कि कौटिल्य तपस्वी, वेदविद्, विद्वान्, धर्मात्मा और क्षमा-शील था। उसने जो कुछ हृदयहीन विचार प्रकट किए हैं, वे राजनैतिक दृष्टिकोण रखकर ही जो शाश्वत हैं। वेदकाल से लेकर अबतक की राजनीति में यही कार्य किए जा रहे हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र के नव शराव सलिलस्य पूर्ण (अधिकरण १० अ० ३ श्लोक ३६) इस श्लोक को उद्धृत करते हुए

डा० जोली ने यह तर्क उपस्थित किया है, कि यह श्लोक भास के नाटक में भी है, इसलिए कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना भास के समय में हुई है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने अर्थशास्त्र से 'अपीहि इत्थोको भवतः' को उद्धृत करते हुए डा० जोली के मत का खंडन किया है, कि इस श्लोक से पहले एक और श्लोक 'यान्यज्ञसद्यैस्तपसा' (३५) है, जो युद्धकाल में सैनिकों को प्रोत्साहन देने के लिए परम्परागत व्यवहृत होता रहा है। कौटल्य ने उदाहरण के रूप में ही इन्हें उद्धृत किया है।

इस संबंध में हम भास के नाटक के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं 'काशिराज' 'सर्वराजः' 'महाराजानम्' 'महाराणा' 'महाराजा'। उपर्युक्त प्रयोग पाणिनि व्याकरण के अनुसार सही नहीं हैं, इन्हें देखकर निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि ये प्रयोग पाणिनि के पूर्ववर्ती किसी आचार्य के व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार हैं। इन प्रयोगों को देखकर भास को पाणिनि का पूर्ववर्ती नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार महाभारत में भी 'सर्वराज्ञाम्' (आदि पर्व १।१०२) 'नागराज्ञा' (आदिपर्व १६।१२) और भागवत में 'पुत्रेति' आदि अनेक शब्द हैं जो पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों के अनुसार निष्पन्न होते हैं।

भास के 'अभिषेक नाटक' में 'विश्वलोक विजय विख्यातविशद् बाहुशालिनि' में विशत् शब्द पाणिनि से बहुत पहले के आचार्यों के व्याकरण का प्रयोग है। भास कवि पाणिनि के परवर्ती थे, फिर भी उन्होंने पाणिनि व्याकरण के नियमों का बहुत धर्म पालन किया है। सम्राट् समुद्रगुप्त लिखित कृष्ण चरित (गोंडल काठियावाड से प्रकाशित) में भास की इस प्रवृत्ति पर लिखा गया है :—

(अयं च नान्वयात् पूर्णदाक्षिण्यपदकूमम्)

सरांश यह कि 'नवं शरावं' श्लोक भास के नाटक में भी होने से कौटल्य भास के समकालिक नहीं कहे जा सकते हैं।

२. डा० जोली की इस दलील का कि "अर्थशास्त्र में पाटलिपुत्र का कहीं उल्लेख नहीं है, रचयिता के भौगोलिक वर्णन तथा दृष्टिकोण से पता चलता

है कि यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में लिखा गया था, जहाँ वह पाया गया है” का उत्तर देते हुए डा० काशीप्रसाद जायसवाल अपनी पुस्तक हिन्दूराजतंत्र पृ० ३५३ में लिखते हैं :

‘अब प्रमाणरूप में वह वाक्य लीजिए जिसमें कहा गया है, कि वर्षा का आरम्भ श्रावण से होता था श्रावणप्रोष्ठपदश्चवर्षा अर्थात् उसके रचयिता के समय में वर्षाऋतु का आरम्भ श्रावण मास से होता था, आजकल की भांति आषाढ के मध्य से नहीं होता था। अब नियम यह है, कि प्रत्येक शताब्दी में ऋतु प्रायः डेढ़ दिन पीछे हटती है।

इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में उसी स्थान पर लिखा है, कि आषाढे मासिनष्टच्छायो मध्याह्नोभवति। यह बात केवल पाटली-पुत्र में ही बैठ कर लिखी जा सकती है। दक्षिण में बैठकर नहीं लिखी जा सकती।’

डा० जायसवाल का यह उत्तर हमें इसलिए नहीं जंचता कि या तो उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में जिन सूत्रों को उद्धृत किया है, उनके अर्थ नहीं समझे या अपने मत की पुष्टि के लिए उनके अर्थों को तौड़ा-मरोड़ा है। स्थान और समय का मान बताते हुए कौटल्य ने लिखा है:—

आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नोभवति। अतः परं श्रावणादीनां षष्मासानां द्वयङ्गुलावराछाया इति।’ (२।२०।४९) छाया नाप कर दिन रात, दोपहर आदि का समय जानने का यह प्रसंग है, जिसके अन्तर्गत बताया गया है, कि आषाढ महीना में मध्याह्न छाया से रहित हो जाता है, इसके बाद सावन से लगाकर छः महीने में दोपहर के समय भी दो अंगुल छाया अविक होती है और फिर माघ आदि छः महीनों में दो अंगुल कम हो जाती है।

कदाचित् डा० जायसवाल ने नष्टच्छायः को बादलों की छाया मानकर इसका संबंध नापने-जोखने से हटाकर वर्षा से जोड़ दिया है। आप का कहना है, कि कौटल्य काल में सावन से बरसात शुरू होती रही असाढ़ से नहीं। उदाहरण के लिए आप ने श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षा यह सूत्र भी उद्धृत किया है।

कौटलीय अर्थशास्त्र के देश काल मान प्रकरण में स्थान और समय का क्रमशः मान बताया गया है। तदनुसार महीनों का मान बताने के बाद ऋतुओं का मान इस प्रकार बताया गया है। :-

द्वौ मासावृतुः। श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः। आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत्। मार्गशीर्षः पौषश्चहेमन्तः। माघः फाल्गुनश्चशिशिरः। चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः। जेष्ठामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः।

तात्पर्य यह कि दो मास की एक ऋतु होती है। श्रावण और भाद्रपद इन दो महीनों की वर्षा ऋतु होती है। इसी प्रकार अन्य दो महीनों की एक-एक ऋतु बताई गई है। इससे असाढ़ या सावन में वरसात शुरू होने का कोई निर्देश नहीं है। जोली की गलतियों का उत्तर देते हुए डा० जायसवाल ने उससे भी ज्यादा भूल की है। शायद उन्होंने वर्षाः, इस शब्द के विसर्ग पर ध्यान नहीं दिया है, इसीलिए वर्षा ऋतु के स्थान पर उन्होंने वरसात अर्थ लगाया। अथवा कनिहम की लिखी हुई इंडियन इयर्स पुस्तक के पृष्ठ ३ के अनुसार सिकन्दर और अशोक के समय में वर्षा का आरम्भ आजकल की अपेक्षा ठीक एक महीने पहले हुआ करता रहा होगा—का अनुकरण किया होगा।

कौटल्य ने चन्द्रगुप्त के शासन और साम्राज्य को सफल एवं व्यापक बनाने के लिए ही अर्थशास्त्र की रचना की है, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :

सर्वशास्त्रण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्यच ।

कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ '२।११।६५'

पुराणों, मुद्राओं, शिलालेखों में यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है, कि चन्द्रगुप्त का दूसरा नाम नरेन्द्र था। यह स्वाभाविक बात है, कि कौटल्य ने अमात्य पदपर रहते हुए जिन विषयों और बातों का अनुभव किया उन्हें वह ऊहापोह द्वारा निश्चित कर लिखता रहा। समय और आवश्यकता के अनुसार उसने पाटलीपुत्र राजधानी और मगधसाम्राज्य के लिए जो नियम और कानून बनाए वही सब अर्थशास्त्र में भी लिखे गए हैं। सारांश यह कि कौटलीय अर्थशास्त्र कौटल्य के अमात्यकाल ही में पाटलीपुत्र ही में लिखा गया है, अन्यत्र नहीं।

३. जोली ने कौटलीय अर्थशास्त्र में चीन आदि का उल्लेख होने से उसे मौर्यकाल से बहुत बाद का बना हुआ माना है।

इसका उत्तर देते हुए डा० जायसवाल ने लिखा है (हिन्दू राज्य तंत्र पृष्ठ ३५१ की पाद टिप्पणी) कि 'अर्थशास्त्र में चीन का उल्लेख है, पर यह कोई अप्रतिजनक बात नहीं है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में दरद अथवा हिमालय के दूसरे प्रदेशों के साथ चीन का प्रायः उल्लेख मिलता है, और उसका अभिप्राय गिलगित की शीन नामक जाति से है, जिसका अब तक यही नाम है, और इस जाति के लोग शहतूत के वृक्ष लगाते और रेशम तैयार करते हैं'।

इससे हम सहमत नहीं हैं क्योंकि कौटलीय अर्थशास्त्र में लिखा है—

तथा कौशेय चीनपट्टाश्च चीन भूमिजा व्याख्याताः । (अधि० २ अ० १२ सूत्र ११९) यह कथन पत्रोर्णा (पत्तों की ऊन) के वर्णन प्रसंग का है। इसे समझने के लिए कुछ पहले के भी सूत्र उद्धृत कर देना आवश्यक है:

पीतिका नागवृक्षिका । गोधूम वर्णा लैकुची । श्वेता वाकुली । शेषा नवनीतवर्णा । तासां सौवर्ण कुड्यका श्रेष्ठा । (११४, ११८)

अर्थात् नागवृक्ष की पत्रोर्णा पीले रंग की बड़हर की गेहुएं रंग, क्री, बकुल की सफेद रंग की और बड़ आदि की वृक्षों की ऊन मक्खन की तरह होती है। इनमें सुवर्ण कुड्य देश में पैदा होने वाली पत्रोर्णा सब से अच्छी होती है। इसी के समान चीन देश का चीनपट्ट भी समझना चाहिए। चीन शब्द शुद्ध भारतीय और संस्कृत का है। चीना इसका संस्कृत रूप है, जिसका अर्थ गहराई होता है। वैदिक युग ही में जो भारतीय, आर्य व्यापार की गरज से या असुर, विट, वन कर भारत से बाहर दूसरे देशों में जाकर बस गये, इन्हीं की एक शाखा चीन में भी जाकर बसी। वे भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति भी अपने साथ लेते गए। चीन की 'पैतिसी' और ओव नदियों के किनारे बसे हुए भारतीय जो चीनी बन गये हैं उनकी भाषा 'सामोपेडिक' कहलाती है। उसमें संस्कृत भाषा की भांति तीन वचन, तीन लिंग और

सात विभक्तियाँ हैं। बीचों बीच और गहराई की जमीन होने के कारण उन्हीं आयों ने ही उस प्रदेश या भूभाग का नाम चीन रखा। अब भी पुरानी चीनी भाषा में चीन को चङ्गुयो (मध्यराज्य) और चङ्गो (मध्य प्रसूत) कहा जाता है। चीन जाने वाले भारतीय चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। हंटर कर्नलटाड ने भी अपने राजस्थान के इतिहास के परिशिष्ट के दूसरे अध्याय में लिखा है:

“मोगल, तातार और चीनी लोग अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रिय बताते हैं। इनमें से तातार अपने को अय का वंशज कहते हैं। यह ‘अय’ पुरुरवा का पुत्र आयु ही है। इस आयु के वंश में बड़ा ‘यदु था और उसका पुत्र ‘हय’ था। चीनी लोग इसी ‘हय’ को ‘ह्य’ कहते हैं और अपना पूर्वज मानते हैं।”

इन जातियों की प्राचीन वंशावली से ज्ञात होता है, कि ‘अय’ की नवीं पीढ़ी में एलखा के दो पुत्र हुए उनके नाम काइकन और नगस थे। यही नगस नागवंश का उत्पादक है। चीनी इतिहास में लिखा है, कि यू की माता के एक तारे का समागम हो जाने से ‘यू’ पैदा हुआ। इससे ज्ञात होता है कि चीनियों का पूर्वज यू बुध है। और उसकी माता इला है, जिसका समागम चन्द्र से हुआ था। सारांश यह कि तातारों का अय, चीनियों का यू और पुराणों के आयु एक ही व्यक्ति है। इन जातियों का मूल पुरुष चन्द्र ही है। चीनियों के आदि पुरुष के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान् ‘यांगत्साई’ ने सन् १५५८ में एक पुस्तक लिखी थी जिसका सम्पादन ह्यानामक चीनी विद्वान् ने सन् १७७६ में किया था। उसी का अनुवाद पादरी क्लार्क ने अंग्रेजी में किया है। उससे मालूम होता है, कि अति प्राचीनकाल में भारत के मो० लो० ची० राज्य का अइ० यू० राजकुमार युनान प्रान्त में आया। इसके पुत्र का नाम ती० मोगंगे था। इसके ती लड़के थे। इन्हीं की सन्तानों से चीनियों का वंश विस्तार हुआ है।

हिन्दी विश्वकोश पृष्ठ ३१८ में उपनिवेश शब्द पर लिखा गया है कि “चीन देश की पुरातत्व आलोचना से यह सिद्ध होता है, कि इसवी

सन् पूर्व ८ वीं शताब्दी में भारतीय आर्य वणिकों ने चीन देश में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अनेक स्थानों में उपनिवेश भी बसाये थे।

इसके अतिरिक्त महाभारत (८।८।१९ और २।२९।१९), मनुस्मृति (१०।७७), विष्णुपुराण (१।६।२१) में चीना और चीनकं आदि शब्द आए हैं। ये ग्रन्थ कौटल्य के बाद के नहीं कहे जा सकते। उनके बाद के राजवल्लभ निबन्ध, त्रिकांडशेषकोश, भावप्रकाश, द्रव्यरत्नाकर, केयदेव और धन्वन्तरि आदि वैद्यक निबन्धों में तथा हर्ष चरित, अभिज्ञान शाकुन्तल आदि काव्यों एवं बृहत्संहिता और संगम तंत्र आदि ग्रन्थों में चीन देश और वहाँ उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के नाम आये हैं। इसलिए यह हर्गिज नहीं कहा जा सकता कि कौटल्य के जमाने में चीन देश की स्थिति इसी नाम से नहीं रही। किन्तु पता नहीं क्यों डा० जायसवाल ने चीन और चीन को एक में मिलाकर ऐतिहासिक तथ्यों को बलायेताक रखकर भाषा विज्ञान की शरण ली है?

कौटल्य ने चमड़े की जातियों का परिचय देते हुए अर्थशास्त्र में चीनसी नाम के एक चमड़े का वर्णन इस प्रकार किया है :

‘सामूरं चीनसी सामूली वाह्लवेयाः चीनसी रक्तकाली पांडुकालीवा’ (अधिकरण २ अध्याय ११ सूत्र ९२ और ९४ ४)

अर्थात् सामूर, चीनसी और सामूली ये तीन प्रकार के चमड़े हिमालय के वालहव प्रदेश में पैदा होते हैं। लाल, काले, अथवा पीले और काले रंग का चमड़ा चीनसी होता है। इसका परिमाण ३६ अंगुल का होता है।

४. डा० जोली द्वारा उठाये गए भौगोलिक तर्क या संदेह के अन्दर नेपाल भी आता है। किन्तु डा० जायसवाल ने इसका कोई निराकरण नहीं किया है। नेपाल भी आधुनिक नाम समझा जाता है, किन्तु कौटल्य ने इसका भी नाम लिया है :

‘पिच्छलमार्द्रमित्र च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठं अष्टप्लोतिसंघात्या कृष्णाभिङ्गसी वर्षावारुणमपसारक इति नेपालकम्। (‘अधिकरण २ अध्याय ११ सूत्र १०५, १०६’)

अर्थात् चिकना, चमकदार बारीक, मुलायम कम्बल उत्तम होता है । आठ टुकड़ों को जोड़ कर बनाई हुई काले रंग की 'भिङ्ग गसी' होती है, यह वर्षा से बचने के काम आती है । इसी प्रकार के एक ही सावित कपड़े का नाम 'अपसारक' है । ये कपड़े नेपाल देश में बनाये जाते हैं ।

हम यहाँ यह बता देना चाहते हैं, कि नेपाल नाम अति प्राचीन है । ने और पाल इन दो वाक्यों से मिलकर नेपाल नाम बनता है । तिब्बती भाषा में 'पाल' शब्द का अर्थ 'पशु' है । तिब्बत तथा उसके आसपास के पर्वतीय प्रदेश नेपाल में पाल (पशु, बाल) की अधिकता और उत्तमता के कारण इसे पालदेश कहते हैं । वर्तमान नेपाल के पूर्वभाग और सिक्किम प्रदेश में रहने वाली आदिम असभ्य 'लेपचा' जाति उसे 'ने' कहा करती थी । तिब्बत और ब्रह्मदेश के लामाओं की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ पवित्र गुफा या सुरक्षित देवपीठ है । नेपाल में ऐसे अनगिनत देवमन्दिर हैं जो गुफाओं के अन्दर हैं । इसीलिए इस देश का नाम नेपाल पड़ा है ।

अथर्ववेद के परिशिष्ट भाग में, स्कन्दपुराण के नागरखंड "१०२।१६" तथा रेवाखंड, सह्याद्रि खंड "३९।९" देवी भागवत, गरुडपुराण "८०।२", अरिष्टनेमि पुराण जैनहरिवंश "११।७२" बृहन्नोलतंत्र, बृहत्संहिता, हेमचन्द्र के स्थविरावली चरित्र बौद्धतंत्र, बौद्ध स्वायम्भुपुराण, स्कन्दपुराण के हिमवत्खंड आदि ग्रन्थों में नेपाल सम्बन्धी विमूल वर्णन भरा पड़ा है ।

बौद्धपर्वतीय वंशावली में लिखा है, कि किरात जाति के 'ने' मुनि द्वारा चलाया गया गोपालवंश यहाँ का सर्वप्रथम शासक रहा । उसने ५२१ वर्ष तक राज्य किया । १५३६ वर्ष बाद जितेदचास्तिनाम के किरातने राज्य किया महाभारत के युद्ध में वह पांडवों के पक्ष में लड़कर मारा गया । नेपाल के दक्षिण तराई में शाक्य वंशी राजा राज्य करते थे । शक्ति संगम तंत्र में लिखा है :

जटेश्वरं समारभ्य योगेशान्तं महेश्वरी ।

नेपालदेशो देवेशि साधकानां सुसिद्धिदः ॥

इन प्रमाणों से नेपाल की प्राचीनता में सन्देह नहीं रह जाता है ।
डा० जोली ने कीटलीय अर्थशास्त्र को नवीन सिद्ध करने के लिए कुछ और तर्क प्रस्तुत किए हैं :

१. अर्थशास्त्र में टोने, टोटके, मंत्र, यंत्र और तंत्र हैं ।

२. द्रो नक्षत्रों का नाम होने से फलितज्योतिष का जानकारी सावित होता है और फलितज्योतिष का अविष्कार उसके बहुत बाद हुआ है

१. कीटल्य ने वाधाओं और उपद्रवों की शान्ति के लिए टोटके, टोने, प्रयोग आदि अथर्ववेद के आधार पर लिखे हैं, और जगह-जगह यह भी लिखा है, कि अथर्ववेद द्वारा शान्ति कर्म कराये जाय । अथर्ववेद स्वयं योग, तंत्र, अभिचार कर्मों का भंडार है । अथर्ववेद का कहना है, कि व्याधियाँ दो प्रकार की होती हैं एक तो भोजन, रहन सहन की गड़बड़ी से दूसरी पूर्व जन्म के पापों से । भोजनादि से उत्पन्न व्याधियाँ आयुर्वेद की औषधियों से शान्त होती हैं और पूर्वजन्म के पापों से उत्पन्न व्याधियों की शान्ति के लिए अथर्ववेदोक्त मंत्र, होम, वन्धन, पायन आदि टोटकों, अनुष्ठानों का प्रयोग करना चाहिए ।

अथर्ववेद के मंत्रों के प्रयोग की विधि अथर्ववेद के सूत्र ग्रन्थों और उसके ७४ परिशिष्ट ग्रन्थों में सर्वाधिक विस्तार लिखी हैं । अथर्ववेद का श्रौतसूत्र, वैतानसूत्र और गृह्यसूत्र, कौशिकसूत्र है इसके पाँच कल्प सूत्र हैं । १. नक्षत्र कल्प. २. शान्ति कल्प ३. अंगिरस कल्प ४. वितान कल्प और ५. संहिता कल्प । इन सभी में विविध प्रकार के मंत्र, तंत्र, टोटके, टोने, शकुन आदि का वर्णन है । अथर्वसंहिता में सफेद कोढ़ और गलित कोढ़ दूर करने का प्रयोग है, सफेद दाग को गाय के गोबर से इतना घिस कि वह लाल हो जाय फिर उस पर मंत्रों द्वारा घमिरा "भांगरा" हलदी, नेवारी और नीलका बूटियों को घिस कर लेंप करे रंग अच्छा हो जायगा । दवा लगाते समय जिन दो मंत्रों को पढ़ा जाता है, वे निम्नांकित हैं :

नक्तं जातास्योषधे, रामे कृष्णे, असिक्वि च ।

इदं रंजनि रंजय किलासे पलितं च यत् ॥१॥

इंद्रक्षितार्युपदिकं परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।

० तमाहरामि निर्वृतेष्वपमस्यादस्पर्शमेतं शंत शारदाय ॥ “अथर्व १

का० अनु० सूक्त १, २”

इसी प्रकार स्त्री को वशीभूत करने का मंत्र भी है:

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुलमलाम् ।

तां सुसंनता कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥

जीवन के हर दैविक, और भौतिक उपद्रवों की शान्ति के लिए एवं इच्छाओं की पूर्ति के लिए अथर्ववेद में सैकड़ों प्रयोग हैं । केवल अथर्ववेद ही में नहीं बल्कि ऋग्वेद और यजुर्वेद आदि में भी हर प्रकार के मंत्र तंत्र और यंत्र के प्रयोग हैं । कौटल्य ने इन्हीं के आधार पर लोकेषणा की पूर्ति के लिए अर्थशास्त्र में इन्हें लिखा है, इससे इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है ।

२. फलित ज्योतिष न तो आधुनिक है और न विदेशी है । इसकी प्राचीनता अगणित ज्योतिष के ही समान है । छान्दोग्योपनिषद् “७।१५२” में नारद ने अपनी जिन अठारह विद्याओं के नाम गिनाये हैं, उनमें एक फलित ज्योतिष भी है । इसी प्रकार मुंडकोपनिषद् “१।५” विष्णुपुराण “३।७।२८, २९” और बौद्ध जातकों में भी इसका उल्लेख है । नारद संहिता “१।४”, ऋग्वेद “२।३।२२।१६४” और तैत्तिरीय ब्राह्मण “२।४।६” में ज्योतिष की प्रमुख गणना है । सौरसंहिता के अनुसार ज्योतिष के सिद्धान्त, संहिता और होरा ये तीन स्कन्ध हैं । तीसरे होरास्कन्ध का तात्पर्य है राशिभेद, ग्रहयोगि, गर्भज्ञान, लग्नज्ञान, आयुर्दाय, दशाभेद, अन्तर्दशादि, अनिष्ट, कर्मजीवा, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादि योग, प्रत्रज्या योग, राशिशील, दृष्टि, ग्रहभावफल, आश्रम, संकीर्णयोग, स्त्री जातक, नष्ट जातक निर्णय तथा द्रष्टाणादि फलों का विचार । (बलभूद्रमिश्रकृत होरास्त) यही होरा स्कन्ध ‘जातक’ कहलाता है, जिसे फलित ज्योतिष का एक अंग भी कह सकते हैं । जातक शब्द का अर्थ है, जन्मकाल के आधार पर शुभ और अशुभ फल निर्णय करने वाला ग्रन्थ । (शब्दकल्पद्रुम, जिल्द २ जातिवर्ग पृष्ठ ५३०) ।

कल्याण वर्मा के सारावली ग्रन्थ “२।२, ४” में होरास्कन्ध का अर्थ करते हुए लिखा गया है, “कि अहोरात्रशब्दके आदि अ और अन्त त्र अक्षर छोड़ देने से होरा शब्द अहोरात्र का संक्षिप्त रूप बनता है। इन्हीं से समस्तग्रहों के शुभाशुभ से फुटों पर विचार होता है। अथवा लग्न का नाम होरा है या लग्नार्द्ध का नाम होरा है, जिसके द्वारा समस्त जातक संबंधी फल विचार किए जाते हैं। सारांश यह कि चतुर्लक्षात्मक ज्योतिष शास्त्र के गणित में सिद्धान्त, तन्त्र और करण तथा फलितसंहिता के अन्तर्गत शकुन, शालहोत्र, स्वर, तिथि, विज्ञान देव और मुहूर्तादि अनेक विषय हैं। गणित और फलित ये दोनों भाग अन्योन्याश्रय संबंध रखते हैं। इनकी ऐतिहासिक प्राचीनता से इनकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि कौटल्य के पूर्ववर्ती पाणिनि ने भी दिव्यपदी ज्योतिष “४।३।५५” नक्षत्रों ४।२।३, ५” २१, २२॥ ४।३।३४, ३७ ” और मुहूर्तों गणपा० ४।३।७३” का उल्लेख किया है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भारतीय इतिहास की रूपरेखा ‘पृष्ठ ४८२, ४८४” में डा० जोली और डा० काशीप्रसाद जायसवाल के मतों का संशोधन करते हुए धर्मसूत्रों की रचना का प्रारम्भ ७वीं शताब्दी ई० पू० मानते हुए कौटलीय अर्थशास्त्र का रचनाकाल चौथी शताब्दी ई० पू० का अन्तिम भाग सिद्ध किया है। जयचन्द्र जी का यह काल निर्धारण बहुत ही प्रामाणिक और युक्तियुक्त है।

रचयिता

कौटलीय अर्थशास्त्र के रचयिता विष्णुगुप्त हैं, जिन्हें कौटल्य या चाणक्य भी कहते हैं। डा० जोली ने कौटलीय अर्थशास्त्र को जाली ग्रन्थ मानते हुए जो ६ तक प्रस्तुत किए हैं, उनके अनुसार कौटल्य या चाणक्य कोई कल्पित नाम है। चन्द्रगुप्त का अमात्य कौटल्य या चाणक्य नहीं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने जोली के भ्रम को दूर करते हुए हिन्दु राजतन्त्र “पृष्ठ ३२७, ३३०” में यह सिद्ध किया है, कि कौटलीय अर्थशास्त्र के रचयिता विष्णुगुप्त कौटल्य या चाणक्य ही हैं।

वस्तुतः अर्थशास्त्र में “नेति कौटल्यः” इति कौटल्यः’ देखकर जोली को भ्रम हुआ है, क्योंकि कोई ग्रन्थ लेखक जब स्वयं ग्रन्थ लिख रहा हो तो किसी मत के समर्थन और विरोध में ‘उत्तम-पुरुष’ का ही प्रयोग करेगा अर्थशास्त्र की भांति प्रथम पुरुष का नहीं। जोली को यह भ्रम इसलिए हो सकता है, कि शायद उन्हें संस्कृत ग्रन्थों की शैली का ठीक-ठीक परिचय न हुआ हो। जोली के सभी तर्क वचन के से हैं, उनमें कोई सार नहीं है और वे पुराने भी हो चुके हैं। इसी प्रकार डा० जायसवाल ने भी जोली को उत्तर देते हुए ‘कौटल्य’ नाम की कुरूपता और उसके कुटिल भाव के लिए कौटल्य के माता-पिता को दोषी माना है।

कौटलीय अर्थशास्त्र के रचनाकाल का निर्णय करते हुए यह लिखा जा चुका है, कि कामन्दक नीतिसार, पंचतंत्र, दशकुमार चरित आदि ग्रन्थों के रचयिताओं ने अर्थशास्त्र के रचयिता विष्णुगुप्त कौटल्य या चाणक्य का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त भविष्यपुराण, भागवत्, विष्णुपुराण स्कन्दपुराण आदि पुराणों में भी भविष्य कथन के रूप में भी अर्थशास्त्र के लेखक विष्णुगुप्त का उल्लेख किया गया है। ऐसा अनुमान है, कि भविष्यपुराण “जब वह आजकल की तरह मिलावटों से भ्रष्ट नहीं था” पहले ही से अन्य पुराणों में भी भविष्य कथन मिलाए गए होंगे। और यह भ्रष्टाचार पूर्व नन्दयुग में या उसके बाद हुआ होगा। वस्तुतः पुराण कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं हैं, उनमें प्राचीन कथाओं के संकलन हैं। इसलिए पुराणों में दिए गए समय की गणना और वंश वृर्णन की परस्पर असमताएँ या अशुद्धियाँ हो जाना सहज ही है। पुराणों की वंशावलियाँ, राजवंशों का शजरा नहीं बल्कि नामावली मात्र है जिनका कोई क्रम नहीं है। आगे के राजाओं के नाम पीछे और पीछे के राजाओं के नाम पहले दे दिए गए हैं। जो लोग पुराणों को इतिहास मान कर किसी निर्णय के लिए प्रामाणिकता

१ कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन ने भी इसी शैली को अपनाया था:
सा चोपाय प्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः।

की कसौटी पर उसके वर्णनों को कसना चाहते हैं, उन्हें निराश होना पड़ता है और वे पुराणों को अप्रामाणिक मान बैठते हैं। कौटल्य ने स्वयं अपने अर्थशास्त्र में (१,५) स्वीकार किया है, “पुराण इतिवृत्त घटनाओं का वृत्तान्त है।” इसलिए जिन पुराणों में चाणक्य या चन्द्रगुप्त का उल्लेख है, उसे केवल वृत्तान्त समझ कर यदि ग्रहण कर लिया जाय तब तो ठीक है और यदि ऐतिहासिक समीक्षा की जाय तो उससे कोई नतीजा हल नहीं हो सकता है। जैसे स्कन्द पुराण कुमारिका खंड अध्याय ३९ में लिखा है: ‘ततस्तिषु सहस्रेषु दशधिकशतकृतेऽभिव्यंनन्दराज्यं च चाणक्योयान् हनिष्यति।’

इस कथन का सारांश यह कि कलियुग के ३३१० वर्ष बीत जाने पर नन्दों का राज्य होगा और चाणक्य उसका विनाश करेंगे। अब यदि इस कथन की ऐतिहासिक समीक्षा के लिए काल गणना की जाय तो चाणक्य चन्द्रगुप्त का समय ईसवी तीसरी शताब्दी ठहरता है। इसलिए पुराणों में लिखित वृत्तान्त से हम केवल उनसे संबंधित व्यक्तियों और घटनाओं की सत्ता ही स्वीकार करते हैं।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त से संबंधित वृत्तान्तों का पुराणों में निर्देश मात्र है, किन्तु परवर्तीकाल के मुद्राराक्षस नाटक, तथा अन्य पाली, प्राकृत, तेलुगु भाषाओं के ग्रन्थों में इनका विस्तृत परिचय मिलता है। प्रोफेसर विल्सन ने अपनी पुस्तक (Theatre of India) भाग ११ पृष्ठ ११४ में यह उल्लेख किया है, कि मेकञ्जी साहब को दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा का एक ग्रन्थ मिला है, जिसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त का जीवन परिचय है। उन्होंने उस पुस्तक का जीवन चरित भी उद्धृत किया है, जो थोड़े बहुत अन्तर से मुद्राराक्षस से मिलता है। बुद्धघोष रचित विनय-पिटक की समन्तपसादिका नाम की टीका में और महानाम स्थविर रचित महावंश में भी चन्द्रगुप्त और चाणक्य का जीवन परिचय है। जैनाचार्य पद्ममन्दिर की लिखी हुई पुस्तक “ऋषि मंडलप्रकरण वृत्ति” में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का जीवन वृत्त है। उपर्युक्त ग्रन्थों के प्रमाण से हम इस

निष्कर्ष पर पहुँचे कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त समकालिक थे और एक दूसरे के सहायक रहे। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि विष्णुगुप्त का ही नाम चाणक्य और कौटल्य था।

विष्णुगुप्त, चाणक्य और कौटल्य

अर्थशास्त्र के प्रणेता का असली नाम विष्णुगुप्त था जैसा कि अर्थशास्त्र समाप्ति पर उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है:

ये न शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगताच भूः ।

अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥

• द्रष्ट्वा विप्रतिपत्तिबहुवा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम् ।

• स्वयमेव विष्णुगुप्तरचकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

अर्थात् जिसने शास्त्र शस्त्र और नन्दराजा के अधीन हुई भूमि का शीघ्र उद्धार अपने क्रोध से किया है, उसी विष्णुगुप्त ने इस अर्थशास्त्र को बनाया है।

शास्त्रों (अर्थशास्त्रों) में अनेक भाष्यकारों के विविध मतभेदों को देखकर स्वयं विष्णुगुप्त ने सूत्रों और उनके भाष्य की रचना की है। इससे यह साफ जाहिर होता है, कि:

१. कौटल्य से पहले अनेक आचार्यों ने अर्थशास्त्र की रचना की, किन्तु उनके मतों में परस्पर अनैक्य था। उन अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम और उनके मतों का उल्लेख कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में करके एक निश्चित मत की स्थापना की है।

२. इस प्रकार अर्थशास्त्र का उद्धार करने के साथ शस्त्र का भी उद्धार किया। अर्थात् महाभारत युद्ध के बाद हिन्दूराज्यतंत्र विघटित हो जाने के साथ ही कमजोर हो गया था। अनेक गणतंत्रराज्य बनाये गए थे, जो परस्पर कलह और व्यसन में ही दिन बिताते थे। कोई सुदृढ़ शासन ऐसा नहीं था जिससे देश की राजनीतिक एकता स्थापित हो सके। यह काम चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को शस्त्र धारण कराकर एक चक्रवर्ती राज्य की स्थापना करके पूरा किया। नन्दराज से पीड़ित प्रजा का उद्धार किया।

३. चाणक्य के क्रुद्ध होने पर ही नन्दराज का विनाश हुआ और उसके बाद शासन को सुदृढ़ बनाने तथा विधानपूर्वक चलाने के लिए उन्होंने अर्थशास्त्र की रचना की। यह ग्रन्थ नरेन्द्र “चन्द्रगुप्त” के लिए लिखा गया है, इसे कौटल्य ने अर्थशास्त्र “अधि० २ अध्याय ११ सूत्र ६५” में लिखा है :

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगसुपलभ्य च ।

कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्यविधिः कृतः ॥

अर्थशास्त्र की समाप्ति में ‘स्वयमेव’ विष्णुगुप्त और प्रारम्भ में ‘कौटल्येन’ लिखा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है, कि विष्णुगुप्त का दूसरा नाम कौटल्य भी था और उन्होंने नरेन्द्र (चन्द्रगुप्त) के लिए शासनविधान के रूप में अर्थशास्त्र की रचना की है।

४. अर्थशास्त्र के अंतिम श्लोकों से यह ज्ञात होता है, कि कौटल्य ने अपने क्रोध द्वारा नन्दराज के अधीन राज्य का उद्धार किया था। विजयगढ़ (मिर्जापुर) की गुफा के एक शिलालेख में ईसवी चौथी शताब्दी की गुप्तलिपि में चाणक्यरोषः लिखा हुआ है। जिसका फोटो पटना म्यूजियम के क्यूरेटर राय साहव एम० घोष लाये हैं (हिन्दूराज्यतन्त्र पृष्ठ ३३२)। इससे भी उक्त श्लोक के कथन की पुष्टि होती है।

इस समीक्षा तथा उन समस्त ग्रन्थों के अध्ययन से जिनमें चाणक्य चन्द्रगुप्त के विभिन्न वृत्तान्त लिखे हैं यही निष्कर्ष मिलता है, कि विष्णुगुप्त कौटल्य (चाणक्य) सम्राट् चन्द्रगुप्त का प्रधान अमात्य था। उसने मगध-राज नन्द को, अपना अपमान करने के कारण मार कर चन्द्रगुप्त को राजा बनाया और शासन को सफल, सुदृढ़ तथा चक्रवर्ती बनाने के लिए उसने कौटल्यीय अर्थशास्त्र की रचना की है।

चाणक्य

इस नाम की व्युत्पत्ति और ख्याति के सम्बन्ध में अनेक मतवाद हैं। हेमचन्द्र कोश में लिखा है:

वात्स्यायनः मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः ।

द्रामिलः पक्षिलः स्वामी विष्णुगुप्तोङ्गुलश्चसः ॥

यादवप्रकाशकृत वैजयन्ती कोश में लिखा है :

वात्स्यायनस्तु कौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः ।

द्रामिलः पक्षिलः स्वामी, मल्लनागोङ्गुलोपिच ।

भोजराजकृत नाम मालिका में लिखा है :

कात्यायनो वरहचिः मैयजिच्च पुनर्वसुः

कात्यायन्नस्तु कौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः

द्रामिलः पक्षिलः स्वामी मल्लनागोङ्गुलोपिच ॥

इन तीनों नाम कोशों में विष्णुगुप्त के पर्यायी वात्स्यायन, मल्लनाग, कौटिल्य, चणकात्मज, वराणक, द्रामिल, पक्षिलस्वामी, और अंगुल हैं ।

नाममालिका में चणकात्मज न होकर कात्यायन, वरहचि, मैयजित, पुनर्वसु नाम और हैं । त्रिकांडशेककोश में कौटिल्य, द्रोमिण, अंगुल ये तीनों ही नाम हैं ? इन कोशों में चाणक्य के नामों में अनैक्य के साथ ही ध्यान देने योग्य बात “कौटिल्य” शब्द है । कुटिलता के उपासक को कौटिल्य कहा जाता है । कदाचित् इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर कौटिल्य को कौटिल्य कहा जान लगा और प्रोफेसर विलसन ने “मैकीवेली आफ इंडिया” कहा है । फल यह हुआ कि कौटिल्य और कौटिल्य की वास्तविकता की जाँच किए बिना विष्णुगुप्त जैसे सदाचारी, विद्वान्, राजनीतिज्ञ और त्यागी, तपस्वी को लोग कुटिल समझ कर उसके अर्थशास्त्र को घृणा की दृष्टि से देखने लगे । हमारा अनुमान है कि “कौटिल्य” यह घृणित नाम उन जैन और बौद्ध ग्रन्थों के निर्माताओं ने लिखना प्रारम्भ किया है, जिन्होंने चाणक्य और उसके अर्थशास्त्र की निन्दा की दुन्दुभी बजायी थी । जिसे परिवर्तीकाल के ग्रन्थ-निर्माता परम्परागत अपनाते गए ।

विष्णुगुप्त चाणक्य और कौटिल्य इन तीन नामों के अतिरिक्त और जितने पक्षिल स्वामी, वात्स्यायन आदि नाम हैं, वे केवल भ्रममूलक हैं,

किसी एक के द्वारा की गयी गलती को उत्तरोत्तर अपनाया गया है। नीतिवाक्यामृत (सोमदेवसूत्रिकृत) में लिखा है :

श्रूयते हि किल चाणक्यस्तीक्ष्णदूतप्रयोगेणैकं नन्दं जघानेति “१३।१५”

विश्वकोष (चादि वर्ग पृष्ठ २७४) में नीतिसार के रचयिता कामन्दक को चाणक्य का प्रधान शिष्य माना गया है। इन्हीं का दूसरा नाम वात्स्यायन था और कामन्दक नीतिसार में इन्होंने प्रारम्भ में ही कौटल्य का अभिवन्दन कर उनके अर्थशास्त्र के आधार पर नीतिसार लिखने की बात कही है। इसमें सन्देह नहीं कि वात्स्यायन चाणक्य के समकालिक और शिष्य रहे होंगे।

कामन्दक नीतिसार की उपाध्यायनिरपेक्षणी टीका के रचयिता ने कौटल्य ही को न्याय भाष्य, कौटल्य भाष्य (अर्थशास्त्र) वात्स्यायन भाष्य (काम शास्त्र) और गौतम स्मृति भाष्य, इन चारों ग्रन्थों का रचयिता माना है। (अलवर राजकीय लाइब्रेरी की पुस्तक सूची का प्ररिश्ष्ट पृ० ११०) कामन्दक नीतिसार “१।५” में ही वात्स्यायन ने एकाकी विशेषण का उल्लेख चाणक्य के लिए किया है। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्र के मस्करी भाष्य में कई स्थलों पर ‘असहाय’ भाष्य उद्धृत है।

यह पहले बताया जा चुका है, कि कामन्दक नीतिसार के रचयिता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ‘नीतिशास्त्रामृतं धीमान् अर्थशास्त्र महोदधेः’ आदि लिखकर कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार किया है, कि यह नीतिसार कौटलीय अर्थशास्त्र के आधार पर लिखा जा रहा है। इसलिए कौटल्य और वात्स्यायन का एक होना सर्वथा असम्भव है। नीतिसार के टीकाकार का यह कथन कि न्याय भाष्य, कौटल्य भाष्य, वात्स्यायन भाष्य आदि चारों ग्रन्थ कौटल्य के ही लिखे हुए हैं सर्वथा असंगत और अप्रामाणिक हैं। उनके एकाकी और मस्करी भाष्यकार के असहाय लिख देने मात्र से ये ग्रन्थ कौटल्य निमित्त नहीं हो सकते हैं।

यादवप्रकाश, पुरुषोत्तम और हेमचन्द्र ने अपने-अपने कोश में विष्णु-

गुप्त, चाणक्य, कौटल्य के अतिरिक्त द्रमिण, अंशूल, वात्स्यायन, मल्लनाग पक्षिलस्वामी, द्रामिल, अंगुल आदि जो नाम दिए हैं, वे भ्रममिश्रित होने के साथ ही पाठभेद से भी रिक्त नहीं हैं। इन 'कोशों' से यह तो निश्चित ही होता है कि विष्णुगुप्त, कौटल्य और चाणक्य एक ही व्यक्ति के नाम हैं। हाँ वात्स्यायन का दूसरा नाम मल्लनाग हो सकता है, जैसा कि सुबन्धु के वासवदत्ता नाटक से (कामसूत्रविन्यास इव मल्लनाग घटित कान्तारसमोदः) भी विदित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि परवर्ती कोशकारों और कवियों ने कौटल्य के समकालिक कई सूत्रकारों को एक ही मानकर बहुत बड़ा भ्रम उत्पन्न कर दिया है।

कौटल्य

कामन्दक नीतिसार की टीका में कौटल्य नाम की व्याख्या की गई है :

कूटो घटस्तं धान्यपूर्णं लान्ति संगृह्णन्तिइति—

कूटलः कुम्भी धान्याइतिप्रसिद्धिः। अतएव तेषां गोत्रापत्यं कौटल्यः विष्णुगुप्तोनाम।

- ८ कूट अर्थात् अन्न से भरे हुए बर्तन को कूटल (अवधी में कोठिला) कहते हैं इसका दूसरा नाम कुम्भीधान्य है। जो ब्राह्मण एक वर्ष के लिए अनाज को बर्तन में भरकर संचित करते हैं उन्हें कूटल या कुम्भीधान्य कहा जाता था। कदाचित् चाणक्य के पूर्वज इसी वृत्ति से आजीविका चलाते रहे होंगे। इसलिए उनके कुल में उत्पन्न होने के कारण वह कौटल्य कहलाये।

चाणक्य और कौटल्य इन दोनों नामों की समीक्षा करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'चणक' गोत्र में उत्पन्न होने के कारण विष्णुगुप्त चाणक्य कहलाये और उनके वंश में कूटलवृत्ति होने के कारण वह कौटल्य कहलाये। ऐसा मालूम होता है, कि विष्णुगुप्त को ये दोनों उपनाम बहुत प्रिय थे, इसलिए उन्होंने सर्वत्र स्वयमेव इनका उपयोग और व्यवहार किया है। वस्तुतः इन दोनों नामों में कुलीनता, विद्वत्ता और त्यागवृत्ति का गौरव निहित है। चाणक्य अपने पूर्वज चणक मुनि की ही भाँति

उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ थे। चणक मुनि का 'नीतिशास्त्र' भारतीय साहित्य का एक उत्तम रत्न है। इसकी प्रशंसा विष्णुपुराण और भागवत आदि पुराणों में कई जगह की गयी है। कूटलवृत्ति भी उत्कृष्ट त्याग और तपस्या की प्रतीक है। मुद्राराक्षस नाटक, कथासरित्सागर आदि पढ़ने से मालूम होता है, कि चाणक्य का सारा जीवन त्याग और तपस्यामय रहा। वह इन्द्रियजित, मेधावी, विद्वान् ब्राह्मण था।

विष्णुगुप्त, चाणक्य और कौटल्य ये तीनों अर्थशास्त्र के रचयिता के नाम होने के साथ ही एक प्रकार के मूल (कन्द) के भी नाम हैं। जैसे : चाणाक्यमूलकं चान्यच्छालेयं विष्णुगुप्तकम्। स्थूलमूलं महाकंदं कौटल्यं महसम्भवम्।

शालामूर्कटकम् मिश्रण..... राजनिघंटु

अर्थात् चाणक्यमूल, विष्णुगुप्त, कौटल्य, महाकन्द, स्थूलमूल और शाला ये नाम एक प्रकार के कन्द के हैं। भावप्रकाश में लिखा है, कि यह कन्द हाथी के दाँत के समान होता है और नेपाल में पैदा होता है। ऊपर के श्लोक में महसम्भवम् अर्थात् बालू में पैदा होना कहा गया है। केयदेव निघंटु में इसी मूल को कपोतिका, बालमूल, घन्वन्तरिनिघंटु में शाला और केयदेव तथा भाव प्रकाश में मूलपोतिका लिखा गया है। आयुर्वेदनिघंटुओं में इस मूलके गुणग्राही, कटु, रुचिबर्द्धक, दीपन- पाचन- कारक, रुक्ष, कफवतिनाशक और कृमिगुल्म आदि रोगहरवताए गए हैं।

इस समीक्षा से ऐसा सिद्ध होता है, कि चाणक्य फलाहार किया करता था और यथासम्भव इसी कंद को ही वह खाता रहा होगा। एक सम्राट् और साम्राज्य के निर्माता द्वारा उपभोग की जानुं वाली वस्तु की प्रसिद्धि उसी के नाम से हो जाने की बहुत प्राचीन परम्परा है और इसके अनेक प्रमाण हैं। जैसे आँवले का प्राश च्यवन ऋषि द्वारा सेवन किए जाने के कारण उसका नाम च्यवनप्राश पड़ गया। श्रृंगी के फल खाने के कारण एक ऋषि का नाम श्रृंगी ही हो गया, ऐसा सुना जाता है, कि कलकत्ता में ब्रिटिशशासन के समय एक गवर्नर की पत्नी का नाम

हेनीडचू था। उसे एक बंगला मिठाई बहुत पसन्द थी, इसलिए उस मिठाई का नाम ही हेनीडचू पड़ गया। इसलिए उक्त मूल का सेवन चाणक्य द्वारा किये जाने के कारण उस मूल का नाम भी चाणक्य आदि हो जाना कोई असम्भव नहीं।

इससे एक बहुत बड़े विवाद का भी हल हो जाता है।

१. अर्थशास्त्र के रचयिता का नामविष्णुगुप्त, चणिक्य और कौटल्य रहा, इससे अतिरिक्त कुछ नहीं।

२. चाणक्य ने मगध या उसके आस पास ही रहकर अपना जीवन व्यतीत किया है।

कौटल्य और कात्यायन

भोजराज ने अपनी नाममालिका में कात्यायन, वरहचि, पुनर्वसु, कौटिल्य और विष्णुगुप्त को एक ही माना है। त्रिकांडशेषकोश में कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित् और वरहचि कात्यायन के पर्यायी लिखे गये हैं। पातंजलमहाभाष्य “३।२।३” में ‘भगवानकात्यः’ लिखा हुआ है। यह गोत्रप्रत्ययान्त नाम वार्तिककार कात्यायन के लिए प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कात्यायन के जो वार्तिक पाठ हैं पतंजलि ने मुख्यतया उन्हीं का व्याख्यान महाभाष्य में किया है। महाभाष्य “३।२।११८” में उन्होंने कात्यायन को वार्तिककार कहा है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार ‘कात्यायन’ युव प्रत्ययान्त नाम है महाभाष्य “३।१।११२” में इस नाम का उल्लेख है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कात्यायन नाम के अनेक आचार्यों का उल्लेख मिलता है कौटल्य ने स्वयं अर्थशास्त्र “अधिकरण ५ अध्याय ५ सूत्र ५३” में ‘कात्यायन’ का उल्लेख किया है प्राचीन शास्त्रों में एक कात्यायन कौशिक है, एक अडिरस, एक भार्गव और एक द्वयामुष्यायण है स्कन्दपुराण “नागरखंड अध्याय १३० श्लोक ७१” में एक कात्यायन याज्ञवल्क्य का पुत्र माना गया है। वह वेदान्त का रचयिता था। स्कन्दपुराण “अ० १३१ श्लोक ४८, ४९” में ही इस कात्यायन को यज्ञविद्या-विचक्षणः” कहा गया है और उसके पुत्र का नाम वरहचि बताया

गया है। यह कात्यायन कौशिक पक्ष का था, जैसा कि स्वर-चित्त प्रतिज्ञा परिशिष्ट (अण्णाशास्त्री द्वारा सम्पादित) "में सोऽहंकी-शिक पक्षः" लिखकर उसने स्वयं स्वीकार किया है। याज्ञवल्क्य रचित "शुक्लयजुःशाखा अध्याय से ज्ञात होता है, कि कात्यायनशुक्ल यजुर्वेद के आडिगरसायन की शाखा का प्रवर्तक है। पाणिनि के "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" सूत्र "४।३।१०५" पर वार्तिककार ने लिखा है, "याज्ञ-वल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात्" इससे जान पड़ता है, कि वार्तिककार कात्यायन का याज्ञवल्क्य से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। इसके अतिरिक्त अष्टाध्यायी के वार्तिक भी शुक्लयजुः प्राति-शाख्य के सूत्रों से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। पतंजलि ने वार्तिककार को "भगवान्कात्यः" लिखकर उनके प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की है, इससे भी जान पड़ता है कि वार्तिककार कात्यायन ऋषि याज्ञवल्क्य के कुल के अवश्य रहे होंगे, क्योंकि वाजसेनीप प्रातिशाख्य "८।५३" में भी कात्यायन का उल्लेख है। सायण ने ऋग्भाष्य (षडङ्गग्रन्थकरण) और तै० सं० प्रथम भाग" में वरहचि को वार्तिककार माना है। महाभाष्य "४।३।१०१" में वरहचि काव्य का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है, कि कात्यायन का उपनाम वरहचि था और वह केवल वैयाकरण ही न थे बल्कि कवि भी थे। महाभाष्य में भ्राजसंज्ञक श्लोकों का उल्लेख है :

यस्तुप्रमुञ्चते कुशलोविशेषे, शब्दान्यथावद् व्यवहारकाले ।

सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र, वाग्योग्विददुष्यति चापशब्दैः ।

महाभाष्य के टीकाकार कैयट और नागेशभट्ट का मत है, कि ये भ्राजश्लोक वार्तिककार कात्यायन के ही हैं। सम्प्रदाय समुद्र गुप्त ने कृष्णचरित के मुनि कवि वर्णन में लिखा है :

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि ।

काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वरहचिः कविः

न केवलं व्याकरणं पुषोष दाक्षीमुत्तमेरित वार्तिकैर्यः ।

काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः ।

अर्थात् कात्यायन ने केवल पाणिनीय व्याकरण को ही नहीं पुष्ट किया है, बल्कि उन्होंने 'स्वर्गारोहण' काव्य को वररुचि के नाम से लिखकर अपनी कवि प्रतिभा का भी परिचय दिया है।

इसका समर्थन जल्हनकृत सूक्ति मुक्तावलि से भी होता है:

यथार्थतां कथं नास्मि माभूद् वररुचेरिह ।

व्यघत्त कंठाभरणं यः सदा (१) रोहणप्रियः ।

इनके अतिरिक्त सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषित मुक्तावली में भी वररुचि रचित श्लोकों का उल्लेख है। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है, कि वार्तिककार वररुचि कात्यायन का समय पाणिनि और कौटिल्य के मध्य रहा है।

चतुर्भाषी (मद्रास से प्रकाशित) के उभयसारिका नामक भाण की पुष्पिका में रचयिता का नाम 'वररुचि मुनि' लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि वररुचि कात्यायन मुनिसंज्ञक थे। मुनित्रयं नमस्कृत्य (सिद्धान्त कौमुदी) 'यथोत्तरं मुनीनां प्राप्ताग्यम्' (महाभाष्य) इन वाक्यों का तात्पर्य पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ही से है। लेकिन उभयसारिका की रचनाशैली में कृत् प्रयोगों का आधिक्य देखकर यह निश्चय होता है, कि यह भाण वररुचि कात्यायन का नहीं है, क्योंकि महाभाष्य में उन्हें 'तद्धितप्रियः' कहा गया है जैसा कि उनके वार्तिकों से भी ज्ञात होता है। यह ग्रन्थ किसी परवर्ती वररुचि का लिखा हुआ होगा और बहुत संभव है, विक्रम के नवरत्नों में से एक वररुचि कवि का लिखा हुआ हो। विक्रमकालिक वररुचि के लिखे हुए लिङ्गानुशासन, विद्यासुन्दर आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें उन्होंने अपने को विक्रम का दरवारी कवि स्वीकार किया है। धोयी न सदुक्ति कर्णामृत में और कालिदास ने ज्योतिर्विदाभरण (२२।१०) में इन्हें विक्रमादित्य का दरवारी कवि लिखा है।

हमारा ऐसा अनुमान है, कि अर्थशास्त्र "५।५।५३" में जिस कात्यायन का उल्लेख है, वह वार्तिककार कात्यायन ही होंगे। अर्थशास्त्र की प्राचीन टीकाओं में कात्यायन को पौंड्र देश के राजा सोमक का मंत्री बताया गया

है। वैजयन्ती कोश “भूमिकांड ३०” में पुंडास्तुवरेन्द्रीपुंडालक्ष्ण लिखा है, काशिका-वृत्ति “१।२।५१” में भी अंग, वंग और सुह्य के साथ पुंड्र का पाठ है। महाभारत “भीष्म, सभा, द्रोण, कर्ण आदि पर्वों” में तथा ऐतरेयब्राह्मण “३३।१७” में पौंड्रक्षत्रिय राजाओं का वर्णन है। अर्थशास्त्र “अधिकारण २ अध्याय ११ सूत्र १०८” में वांगक” वंगाल का बना हुआ” पौंड्रक “पुंड्र का बना हुआ” सौवर्ण कुडचक “आसाम के सुवर्ण कुड्यस्थान का बना हुआ” दुकूल “रेशमी वस्त्र” उल्लिखित है। यहीं अर्थशास्त्र “सूत्र १११” में काशी और पुंड्र देश में बनाये जाने वाले क्षीम वस्त्र तथा सूत्र ११२” में मगधः पुंड्रक और सुवर्ण कुडचक में पैदा होने वाली पत्रोर्णा का वर्णन है। महाभारत “सभापर्व ७८।१३” में लिखा है, कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पौंड्रक्षत्रिय रेशमी दुकूलों की भेंट लेकर आये थे। इस विवेचन से यह निश्चय होता है, कि पुंड्र देश मगध के पास ही बंगाल आसाम के बीच रहा होगा, हो सकता है वर्तमान भागलपुर (बिहार) का उत्तर पूर्वी भाग पुंड्र हो। यह बात कात्यायन के पूर्वज याज्ञवल्क्य का विदेह “मिथला” के यहाँ रहने से भी पुष्ट होती है। भागलपुर की अंडी “एक प्रकार की रेशम” अब भी मशहूर है। इसलिए यह निश्चित है, कि कात्यायन पाणिनीय सूत्रों के वार्तिककार ही थे।

अर्थशास्त्र के प्रचीन आचार्य

अर्थशास्त्र में कौणपदन्त, भारद्वाज, वातव्याधि, मानव वार्हस्पत्य, विशालाक्ष, पाराशर, पिशुन, बहुदन्तीपुत्र आदि आचार्यों के मत उद्धृत किए गए हैं।

कौणपदन्त

इनका दूसरा नाम भीष्म था। महाभारतकाल में जो अर्थशास्त्र लिखे गए हैं, उनमें पहला अर्थशास्त्र इन्हीं का रहा है। कौटिलीय अर्थशास्त्र की टीका में माधवयज्वा ने भी कौणपदन्त का दूसरा नाम भीष्म स्वीकार किया है। त्रिकांडशेष “२।८।१२” में भी कौणपदन्त को भीष्म माना गया है।

भारद्वाज

महाभारतकाल के रचित अर्थशास्त्रों में दूसरा अर्थशास्त्र भारद्वाज का है। इनका दूसरा नाम द्रोण था।

वातव्याधि

कौणपदन्त, भारद्वाज के बाद तीसरा अर्थशास्त्र वातव्याधिका है, इनका दूसरा नाम उद्धव था। महाभारत “सभापर्व १४।६३।६४” में वृष्णि अन्धकों के सात मंत्रियों में से एक मंत्री उद्धव माने गए हैं। पलीट के गुप्त शिला लेख में “अन्धकानामिवोद्धवः” जो मालव संवत् ५८९ के यशोधर्मा का माना जाता है उद्धव की कीर्ति उल्लिखित है। मत्स्यपुराण “४६।२३” में उद्धव प्रकांड विद्वान् माने गए हैं।

वार्हस्पत्य

आचार्य वृहस्पति के अनुयायी वार्हस्पत्य कहलाते थे। महाभारत में “शान्तिपर्व २३।१४, १६।५५।३८” में इनका मत उद्धृत है। ‘वार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम्’ अब भी विद्यमान है। इसका एक संस्करण त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हुआ है। सरस्वती भवन लाइब्रेरी काशी में भी इसकी एक हस्तलिखित प्रति मौजूद है। यह शास्त्र गद्य पद्य मय है।

औशनस्

उशना के अनुयायी औशनस् कहलाते थे। औशनस् अर्थशास्त्र के कुछ अंश अभी भी मिलते हैं। महाभारत “शान्तिपर्व ५६।४०, ४२ और ११८।१०” में औशनस् मत उद्धृत है। जैमिनीय ब्राह्मण “१।१२५” में लिखा है, कि देवताओं के पुरोहित वृहस्पति थे और असुरों के पुरोहित उशना काव्य थे। तांडय ब्राह्मण “७।५।२०” और वीधायन श्रौत सूत्र “१८।४६” में उशना असुरों का पुरोहित माना गया है।

बहुदन्तीपुत्र

अर्थशास्त्र के प्राचीन टीकाकारों ने इन्हें ही इन्द्र माना है। छान्दोग्य उपनिषद् “८।७, ११” के अनुसार प्रजापति, अश्विनी, वृहस्पति कुमार

और यह इनके आचार्य थे । इसी प्रकार मनु, पराशर, पिशुन और विशालाक्ष के मत भी पुराणों, महाभारत आदि में मिलते हैं ।

अर्थशास्त्र में इतिहास

कौटल्य ने प्रसंगात्, कई जगह अर्थशास्त्र में ऐतिहासिक कथाओं का उल्लेख किया है । जैसे,

१. भोज वंश का रीजा दाडक्य और विदेह का राजा कराल काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण कन्या का अपहरण करने से सर्वनाश को प्राप्त हुआ ।

२. इला का पुत्र पुरुरवा लोभ के वशीभूत होकर विनष्ट हुआ ।

३. अभिमान के वशीभूत होकर रावण सीता का अपहरण कर अपना सर्वनाश किया ।

४. सीवीर देश का राजा अजविन्दु भी लोभ के कारण विनष्ट हो गया ।

५. जनमेजय ब्राह्मणों से कलह कर उनके शाप से नष्ट हो गया ।

६. भृगुओं से कलह कर तालजंघ मारा गया ।

७. राज्य का हिस्सा अपने भाइयों को न देकर उनसे युद्ध करने से दुर्योधन मारा गया ।

८. मदोन्मत्त डम्भोद्भव राजा अपनी प्रजा से तिरस्कृत हुआ और नरनारायण के साथ युद्ध करने से विनष्ट हुआ ।

९. मदोन्मत्त है ह्याधिराज परशुराम के हाथ से मारा गया ।

१०. हर्ष के वशीभूत होकर वातापि राक्षस अगस्त्य द्वारा और यादव समूह अपनी प्रवंचना से द्वैपायन द्वारा विनष्ट हुए । “अर्थ ०१।६।३”

११. यह जल सींचने वाला ऊपर जल सींच रहा है । यह देखकर मंत्री कात्यायन राजा को छोड़कर चला गया ।

१२. कौच पक्षी वाई ओर से उड़ गया यह देखकर भारद्वाज गोत्री मंत्री कणिक राजा को छोड़ गया ।

१३. तिनके को देखकर आचार्य दीर्घचारायण राजा को छोड़कर चला गया ।

१४. कपड़ा ठंडा है यह बात सुनकर आचार्य घोटकमुख राजा को छोड़ कर चला गया ।

१५. हाथी ने ऊपर से जल छोड़ दिया यह देखकर आचार्य किजलक राजा को छोड़ कर चला गया ।

१६. रथ के घोड़े की प्रशंसा सुनकर आचार्य पिशुन अपने राजा को छोड़कर चला गया ।

१७. कुत्ते के भूकने पर आचार्य पिशुन का पुत्र अपने राजा को छोड़कर चला गया । “अर्थ० ५।६।९३”

१८. अम्बरीष नाभाग ने शत्रु षड्वर्ग का उच्छेद कर चिरकाल तक राज्य किया “१।६”

१९. सौवीर “वीरसेन परन्तप” राजा को उसकी स्त्री ने विष से बुझायी गयी मणि से मार डाला “२।२०”

उपर्युक्त अन्तर्कथाएं वेदों, उपनिषदों और पुराणों में सर्वत्र मिलती हैं ।

इन कथाओं में कुछ ऐसे देशों और व्यक्तियों के नाम हैं, जिनपर आधुनिक इतिहासकारों ने कोई अधिक खोज नहीं की है । जैसे, सौवीर, कणिङ्क, दीर्घचारायण ।

सौवीर जनपद की स्थापना उशीनर ने की थी । इसकी प्राचीन राजधानी की सर्वप्रथम खोज करने का श्रेय प्रोफेसर सिल्वेन लेवी को प्राप्त है ।

उन्होंने : दन्तपुरं कलिङ्गाना अस्सकानांच पोटनम् ।

माहिष्मती अवन्तीनां सौवीरानां च रोहकम् ।

“भारतवर्ष का इतिहास भगवद्दत्त पृ० १५९”

यह प्राकृत पद्य उद्धृत कर रोहक को सौवीर की राजधानी सिद्ध किया था । स्टेन कोर्नी “जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री भाग १२, संख्या १ पृ० १०” ने रोहक को रोहड़ी या रोड़ी माना है । अलबेरुनी “अलबेरुनी का भारत भाग १ पृ० ३००” ने मुलतान तथा जहल्वार को सौवीर माना है । महाभारत “भीष्म पर्व ५९।७६” में सौवीर गणराज्य था । काशिकावृत्ति “४।२।७६” में सौवीर की एक नगरी “दात्तामित्र” का उल्लेख है ।

महाभारत “आदिपर्व” में लिखा है, कि अर्जुन ने विचल, दत्तुमित्र और सुमित्र नामक सौवीरों को जीता था। अर्थशास्त्र में जिस सौवीर राजा अजबिन्दु का उल्लेख है, उसके नष्ट होने की पूरी कथा महाभारत “उद्योगपर्व ७३।१०” में है। अर्थशास्त्र में जिस सौवीर राजा को उसकी पत्नी द्वारा विष बुझी हुई मणि से मारे जाने का उल्लेख है, और अर्थशास्त्र में टीकाकार गणपति शास्त्री ने उसे परन्तप नाम का राजा लिखा है, उसकी कथा भविष्यपुराण “८।५७” में मिलती है और वाण ने अपने हर्षचरित” उच्छ्वास ६ में सौवीर राजा का नाम तथा उसकी रानी का नाम हंसवती लिखा है।

कणिङ्क

अर्थशास्त्र में जिस कणिङ्क के भारद्वाज का निर्देश है, और गणपति शास्त्री ने जिसे कोसल का राजा परन्तप लिखा है पुराणों में उसे सुनक्षत्र का अधिकारी किन्नराश्व परन्तप पुष्कर माना गया है।

दीर्घचारायण

महाभाष्य “१।१।३७” वामन काशिकावृत्ति “६।२।६९” शाकटायन वृत्ति “२।४।२” अष्टाध्यायी “४।१।९९” में चारायण आचार्य का उल्लेख है। अर्थशास्त्र में तृणमिति दीर्घचारायणः सूत्र है, जिसकी टीका करते हुए गणपति शास्त्री ने लिखा है, कि मगध में बालक या बाल नाम का राजा था, उसका आचार्य दीर्घचारायण था इसकी पूरी कथा हमने कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुवाद (प्रकाशक, किताब मंजरी, प्रयाग) में दी है। भारतवर्ष के इतिहास “पृष्ठ २४८” में पं० भगवद्दत्त वी० ए० ने लिखा है कि “मगध बाल प्रद्योतवंश का चलाने वाला बालक ही है। इस दीर्घचारायण का प्रसेनजित कोसल राजा के मंत्री दीर्घचारायण से भेद ध्यान में रखना चाहिए। दीर्घचारायण महाराज बालक के पिता का प्रिय मित्र था, संभव है, चारायण ने राज्यहस्तगत करने में पुलक की सहायता की हो। बालक ने अपने आचार्य को अपमानित करने का विचार किया। विद्वान् दीर्घ राजा माता का संकेत पाकर मगध छोड़कर चला गया। आधुनिक ऐतिहा-

सिक मगध के इस प्रद्योत वंश को नहीं मानते वे अवन्ति के प्रद्योत वंश को ही समझते हैं। अवन्ति का कोई प्रद्योत वंश नहीं था अवन्तिका चंड प्रद्योत अपने कुल का पहला राजा न था। वह कुल के मध्य में था”...। इससे स्पष्ट है, कि दीर्घचारायण मगध के बालक राजा का आचार्य था।
अर्थशास्त्र में पुराण

पुराणों की प्राचीनता पर आधुनिक इतिहासकारों को सन्देह है, कदाचित् इसीलिए डा० जोली ने अर्थशास्त्र में उल्लिखित ‘पुराण’ शब्द के आधार पर अर्थशास्त्र को प्राचीन मानने से इनकार किया है। वस्तुतः पुराण और वेद समकालिक हैं। जैसे पहले वेद केवल एक ही था, ‘पुरा-पुराण मैकमेवासीत् (शतपथ ब्राह्मण) मस्करी सूत्र “१।३९” के भाष्य पर कण्व धर्मसूत्र का एक वचन अथर्ववेदेतिहासपुराणानध्यायन् उद्धृत है। इससे ज्ञात होता है, कि पुराण प्राचीन और धर्मसूत्र, अपस्तम्बसूत्रकाल में उनकी स्थित रही है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र “१।६।१९।१३।१४, २।१।२३।२।६।२३।३।४ और १।१०।२९।७” में पुराणों के श्लोक भी उद्धृत हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक “२।९। शतपथ ब्राह्मण “१।३।४।३।१३” और अथर्ववेद “१।५।३०।१” में पुराणों का उल्लेख है।

कौटिल्य ने ब्राह्मण क्षत्रिय आदि से भी सूत, मागध जाति को “पौराणिकस्त्वन्येव” “३।७।३१” कहकर श्रेष्ठ माना है। कई जगह इति पौराणिकाः कहकर पुराणवेत्ताओं के मत का समादर किया है यह कहकर कि वह इतिहास पुराणाभ्यां बोधयेत् अर्थशास्त्र विद् “इतिहास और पुराणों द्वारा बोधप्राप्त करे।”

लोकन्याय और लोकोक्तियाँ

अर्थशास्त्र में कई स्थलों पर प्रसंगात् लोकन्याय और लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं जैसे: मात्स्य न्याय “१।१३।६” और

अपिशक्या गतिर्जातुं पततां खे पतन्निगाम्

नतुप्रच्छन्नभावानां, युक्तानां चरतां गतिः २।९।३८ इसी प्रकार यहीं पर दो और श्लोक “ ३७, ३६” उल्लिखित हैं।

अर्थशास्त्र की सामाजिक प्रथाएँ

विवाह : कौटिल्य ने धर्मशास्त्र के अनुकूल ही ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्य, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है। वयस्कों का विवाह होता था, विवाह तय हो जाने पर फिर बन्धन तोड़ा नहीं जाता था। कुछ परिस्थितियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य विवाह संस्कार होने से पूर्व एकरार भी तोड़ा करते थे। तीनों उच्च वर्णों में 'ओपशायिक' दोष उत्पन्न हो जाने पर विवाह के बाद भी तलाक देने का नियम था, किन्तु यदि बाल वच्चे पदा हो गये हों तो विवाह विच्छेद नहीं होता था। विवाह हो जाने के बाद यदि स्त्री के गर्भ न रहता हो अथवा उसको गर्भाधान शक्ति क्षीण हो तो पति आठ वर्ष तक इन्तजार करता था, यदि मरा हुआ बच्चा पदा होता तो दस वर्ष तक और यदि केवल लड़कियाँ ही उत्पन्न होती तो बाहर वर्ष तक इन्तजार करने के बाद पुनर्विवाह, पति दूसरा विवाह किया करता था। इस नियम का उल्लंघन करने पर दंड दिया जाता था। स्त्रियों को भी विशेष अवस्था में तलाक देने, दूसरा विवाह करने का अधिकार था। बती विधवा यदि सन्तानवती होने की इच्छा रखकर दूसरा विवाह करती तो उसे अपने ससुर और पति का धन पुनर्विवाह के समय दे दिया जाता था। एक ही स्त्री अनेक पुरुषों द्वारा अनेक पुत्र भी पैदा करती थी और जिस पिता का जो पुत्र होता था वही अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी माना जाता था। एकपत्नीव्रत और पातिव्रत का आदर्श सर्वत्र सम्मानित था। आठ प्रकार के विवाहों में से प्रथम चार प्रकार के धार्मिक विवाहों में मोक्ष 'तलाक' का नियम नहीं था। हाँ यदि पति पत्नी का परस्पर द्वेष रहता हो तो मोक्ष स्वीकार किया जाता था। लेकिन केवल एक के द्वेष करने से नहीं। विवाहिता स्त्री की इच्छा के अनुसार यदि कोई परपुरुष उससे संभोग करता तो कठोर दंड दिया जाता था। इसी प्रकार अक्षतयोनि कन्या से संभोग पर दंड दिया जाता था। लेकिन सकाम और क्षतयोनि स्त्री के साथ यदि उसका भावी पति सात मासिक धर्म के बाद संभोग करता तो वह अपराधी नहीं माना जाता

था। तीन वर्ष तक मासिक धर्म होने के बाद यदि कन्या का विवाह न होता तो कोई भी उसकी जाति का पुरुष उसकी इच्छा होने पर सम्बन्ध कर सकता था। परायी स्त्री को घोर संकटों से बचाने वाला पुरुष उस उस स्त्री की इच्छा होने पर उसके साथ सम्बन्ध कर सकता था। व्यभिचारी स्त्री पुरुष दोनों को दंड दिया जाता था। व्यभिचारी पुरुष को मृत्यु दंड तथा स्त्री को नाक, कान काटने का दंड दिया जाता था। नियोग से उत्पन्न बालक अपनी माता के गोत्रीय परिवार की सम्पत्तिका अधिकारी माना जाता था। राजा यदि वृद्ध अथवा सदैव बीमार रहता तो वह अपने गोत्र के किसी पुरुष अथवा कुलीनसामंत से नियोग करा कर सन्तान पैदा लिया करता था। नियोग की प्रथा भोगविलास के लिए नहीं बल्कि सन्तानोपत्ति के लिए ही थी। यदि किसी युवती कन्या का विवाह उसके माता-पिता नहीं करते तो वह स्त्री अपने किसी प्रेमी या योग्य सवर्ण पुरुष से स्वयं विवाह कर लेती थी। प्रवास गए हुए शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तक तथा पुत्रवती स्त्रियाँ इससे अधिक समय तक पति के आने की प्रतीक्षा करती थीं। यदि पति उनके भरण-पोषण का इन्तजाम कर गये हों तो इससे दुगुने समय तक और ऐसा न होने उनके समर्थ बन्धु-बान्धव ६ या ८ वर्ष तक उनका पालन करते थे। इसके बाद उस स्त्री से उसके प्रथम विवाह में प्राप्त धन को वापस लेकर उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति देते थे। विद्याध्ययन के लिए बाहर गए ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दस वर्ष तक, पुत्रवती बारह वर्ष तक अपने पतियों के आगमन की प्रतीक्षा करती थीं। लेकिन राजकाज वे से बाहर क गए हुए पतियों की स्त्रियाँ उम्र भर उनकी प्रतीक्षा करतीं और राजा की ओर से उनका पालन होता था। फिर भी यदि समान वर्ण के योग से उनके गर्भ रह जाता तो बुरा नहीं समझा जाता था। ऋतुकाल में यदि स्त्री से संभोग न किया जाय तो महान् अधर्म समझा जाता था।

उत्तराधिकार

स्त्रीधन : वृत्ति और अवध्य दो प्रकार का स्त्रीधन माना जाता

था। वृत्ति का धन स्त्री को दो हजार पण दिया जाता था। गहने आदि के रूप में उसका आवध्य धन होता था। एक तीसरा शुल्क धन होता था जो विवाहकाल में शुल्क के रूप में दिया जाता था। स्त्रीधन पर केवल स्त्री का और उनके बाद उसके लड़कों का अधिकार होता था। स्त्री अपने धन का, उपभोग पति के परदेश चले जाने पर या घोर संकट में ही कर सकती थी। विधवा होने पर यदि स्त्री पुनर्विवाह करती तो स्त्री धन पर उसका अधिकार नहीं रह जाता था। लेकिन यदि वह सन्तान की इच्छा रखकर अपने ससुर की सलाह से पुनर्विवाह करती तो विवाहकाल में उसे उसका स्त्रीधन दिया जाता था। जो व्यक्ति इतनी भी हैसियत नहीं रखता था, कि वह स्त्रीधन न दे सके उसे विवाह करने का अधिकार नहीं था। तालिग की जायदाद का ट्रस्ट बनाया जाता था।

परदे की प्रथा

उच्च कुलों में परदे की प्रथा थी। कुलीन स्त्रियाँ जो विधवा, अनाथ, प्रोषितभर्तृका होती थीं उन्हें राज्य की ओर से चरखा कातने, कसीदाकाढने, सिलाई, बुनाई आदि के काम देकर वेतन दिया जाता था और उनके परदे पर पूरा ध्यान रखा जाता था। कुलीन स्त्रियों को रास्ते में यदि कोई छेड़ता या उनके मुख की ओर देखता था तो उसे कठोर दंड दिया जाता था। परदा इज्जत का ही रहा है घूँघुट और बुरके का नहीं।

वेश्यालय

उस समय वेश्यालय सरकार द्वारा रजिस्टर्ड होते थे, वेश्याओं के लिए अलग संस्थान 'मुहल्ले' रहते थे। उन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था। किसी वेश्या की इच्छा के विरुद्ध भोग करने वाले दंड पाते थे। कुमारी वेश्या के साथ बलात्कार करने वाले कठोर दंड पाते थे।

दास प्रथा

उस समय आर्यों को गुलाम नहीं बनाया जाता था, कदाचित् उन्हें कोई दास बनाता तो वह वर्ण दंड विधान के अनुसार दंड पाता था। दासों

के बाल-बच्चों स्त्रियों उनकी को इच्छा के विरुद्ध दास नहीं बनाया जाता था। दासों की निजी सम्पत्ति पर उनकी सन्तान का अधिकार होता था। दासों के प्रति या उनके परिवार वालों के प्रति अश्लील या अनुचित व्यवहार करने की मनाही थी।

वेगार

गाँव का मुखिया जब गाँव के काम से बाहर जाता तो गाँव के लोग अपनी-अपनी पारी से उसके साथ जाते थे। सरकारी अधिकारी के वेगार होने वालों को उचित मजदूरी दी जाती थी।

धार्मिक कृत्य

गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कारों का रिवाज था। किसी के मरने पर साँड दगाये जाते थे। देवी देवताओं की उपासना की जाती थी, यज्ञ, हवन, अनुष्ठान किये जाते थे। चारों आश्रमों और चारों वर्णों के कर्तव्य निश्चित थे। यंत्र, तंत्र टोटका, टोना आदि पर भी विश्वास किया जाता था। ब्राह्मण समाज के पुरोधा माने जाते थे। उनकी समाज इज्जत करता था। शासनविधान भी उन्हें रियायतें देता था। सोवर, सूदक मानने की प्रथा थी।

व्यवहार

परस्पर लेन, देन, ऋण, उधार, गिरवी, धरोहर के नियम प्रचलित थे। गाँव-गाँव में पंचायतें कायम थीं, जो घर, भूमि आदि के छोटे-छोटे झगड़े निपटाती थीं। सामूहिक खेती का नियम था। राज्य की ओर से व्यवसाय, पूंजी, यातायात आदि का राष्ट्रीयकरण था।

अर्थशास्त्र का शासन विधान

कौटिलीय अर्थशास्त्र की शासनपद्धति धर्ममूलक है। अर्थात् सामाजिक नियमों को धारण करने वाले विभिन्न कर्त्तव्यों को पालन करना धर्म समझा जाता था और उसी के अनुसार शासन यंत्र भी संचालित था। राजनीति में धर्म और विद्याओं 'सामाजिक' का समादर था। आन्वि-

क्षिकी, त्रयीवार्ता, दंडनीति इन्हीं विद्याओं को आधार मान कर शासन चिलाया जाता था। प्रजा के सुख में राजा का सुख, प्रजा के हित में राजा का हित समझा जाता था। शासन का उद्देश्य धर्म, न्याय, नियम और चरित्र समझा जाता था। एक राष्ट्र, एक भाषा का सिद्धान्त प्रमुख था। धर्म का पालन राज्य के अस्तित्व पर निर्भर माना जाता था। राजदंड के भय से सभी लोग स्वधर्म पालन करते थे। जीविका का साधन भी दंडनीति बनी हुई थी। राष्ट्र की प्रजा कर्तव्यच्युत और धर्ममार्ग से भ्रष्ट न हो जाय, स्वधर्म का पालन करता हुआ राजा उभयलोक में सुखी रहे, श्रेष्ठ सामाजिक मर्यादा की स्थित, वर्णाश्रमधर्म की उचित परिस्थिति से प्रजा सदैव सुखी रहे, किसी प्रकार का क्लेश न हो, यही राज्य का उद्देश्य माना गया है।

शासन पद्धतियाँ

अर्थशास्त्र में कौटल्य ने राजतन्त्र, कुलराज्य, संघराज्य और स्वायत्त-शासन इन चार प्रकार की शासन पद्धतियों को स्वीकार किया है।

राजतन्त्र

सम्पूर्ण गणराज्यों को मिलाकर उसने एक तन्त्र की स्थापना की। वह यह भली भाँति जानता था कि एक तन्त्र में अनेक दोष होते हैं, क्योंकि एक ही राजा उसका सर्वोत्तम होता है। इसलिए उसने राजा को सर्वगुणसम्पन्न बनाने का पूरा प्रयत्न किया है, वह मदान्ध, स्वेच्छाचारी और प्रजापीड़क न हो जाय इसलिए उसे पुरोहित, मंत्री, अमात्य आदि प्रकृतिमंडल का पूरा नियंत्रण भी रखा है। राजा के उत्तराधिकारी को भी राजोचित गुणों से सम्पन्न बनाने के लिए कौटल्य ने राजकुमारों की शिक्षा, दीक्षा, रहन सहन, आचार व्यवहार, भोजन शयन आदि हर बात पर उचित विधान बनाया है साथ ही राजा के पुरोहित, मंत्री, अमात्य आदि प्रकृतिवर्ग के लिए भी कार्य और कर्तव्य निर्धारित किए हैं। इस विधान का तीव्रपर्यय यही रहा है, कि राजा स्वयं सुखी, समृद्ध बनकर निष्कण्टक राज्य करता हुआ समस्त प्रजा को सुखी, समृद्ध और शान्त बना सके।

कुलराज्य

आवश्यकता और परिस्थिति वश एक राज्यतंत्र कुलराज्य भी बन सकता था। ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी का अधिकारी मानते हुए भी कौटल्य ने बताया है, कि यदि राजा के कई गुणवान प्रजानुरंजक पुत्र हों तो सब मिलकर राजकाज चलायें। इस प्रकार का राज्य कुल राज्य कहा जाता था। समस्त परिवार द्वारा संचालित संरक्षित कुलराज्य शत्रु द्वारा सहज नहीं जीता जा सकता। राज्य की, प्रजा सदैव सुखी और शान्त बनी रहती है।

१. संघराज

कौटल्य के जमाने में अनेक गणराज्य और नगरराष्ट्र थे। जो एक प्रकार के प्रजातांत्रिक प्रणाली पर शासन संचालित कर रहे थे। जिसके पास जितना कोश और बल "सेना" था उतने से वे पूर्ण सशक्त और सम्पन्न अवश्य थे, किन्तु अपनी स्वतंत्र सत्ता को चिरकालिक या सुरक्षित बनाये रखने में वे अक्षम्य थे। देश भर की शक्ति को बिखरी हुई देखकर कौटल्य ने उन सबको एकत्र कर एक विशालसाम्राज्य की स्थापना की। उस साम्राज्य के अन्तर्गत उन संघराज्यों का अस्तित्व बराबर कायम रहा, वे स्थानीय शासन और आन्तरिक निर्णय में पूर्ण स्वतन्त्र थे, किन्तु केन्द्रीय शासन का प्रभुत्व मानते थे। सभी संघराज्यों को केन्द्रीय शासन के अनुकूल बनाये रखने का विधान अर्थशास्त्र में है। यदि वे किसी समय विपरीत हो जायें तो साम, दाम, दंड आदिके द्वारा उन्हें वश में करने भी विधान बताया गया है। उस समय वातशिस्त्रोपजीवी और राज शब्दोपजीवी दो प्रकार के संघराज्य थे। पहले प्रकार के संघराज्य कृषि, व्यापार और युद्ध के कार्यों में निरत रहते थे। उस समय कौम्बोज, सुराष्ट्र के क्षत्रियों के संघराज्य वातशिस्त्रोपजीवी थे और लिच्छविक, व्रजिक, मल्लिक, मद्रक, कुम्भुर, कुस और पांचाल देशों के संघराज्य राजशब्दोपजीवी थे।

इन दो प्रकार के संघराज्यों के यहाँ केन्द्रीय शासन के गुप्तचर रहा करते जो संघराज्यों को कमजोर बनाने के लिए अनेक गुप्त षड्यन्त्र रचा करते

ये संघराज्य के राजाओं में से एक राजा सबकी सम्मति से मुख्य 'मुखिया' राजा चुना जाता था। जो अपने संघ और और केन्द्रीय शासन स्वायत्तशासन

के प्रतिवफादार रहता था।

एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत अनेक स्वायत्तशासन अधिकार प्रजा को दे दिये गए थे। जिसका तात्पर्य केवल यही रहा था कि प्रजा और राजा के बीच कोई असन्तोष, अभाव और मनमुटाव न पैदा होने पावे।

१ राजा २ अमात्य ३ जनपद ४ दुर्ग ५ कोश ६ दंड "सेना" ७ मित्र ये सातों में से प्रत्येक का नाम प्रकृति था और इन सबके समुदाय को प्रकृतिमंडल कहा जाता था।

प्रकृतिमंडल

१. राजा के आभिगामिक और आत्मसम्पद दो प्रकार के गुण बताए गए हैं।

१. अभिगामिक

उच्चकुल में उत्पन्न, भाग्यशाली, मेधावी, वैयशाली, दूरदर्शी धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, महादानी, परमोत्साही, क्षिप्रकारी, सामन्तों को अपने ऋजों में रखने वाला, दृढ़ निश्चय, गुणी परिवार से युक्त, शास्त्रे मर्यादा का इच्छुक ये सोलह आभिगामिक गुण राजा के माने जाते थे।

आभिगामिक गुण के प्रज्ञागुण और उत्साहगुण दो भेद माने गये हैं।

प्रज्ञागुण

शास्त्रों को सुनने और पढ़ने की इच्छा, शास्त्र ज्ञान, घर बाह्य बात को समझना और समझकर उसे याद रखना, वास्तविक बात को जानने के लिए तर्क करना, दुष्टपक्ष को त्यागकर गुणीपक्ष को ग्रहण करना प्रज्ञागुण माने गए हैं।

उत्साहगुण

निर्भीकता, अनाचार को क्षमा न करना, शीघ्र कार्य करने की प्रवृत्ति,

लंघन, प्लवन और आरोहण कार्यों के कुशल, ये उत्साहगुण हैं ।

२. आत्मसम्पद्गुण

वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृतिमति तथा बल से युक्त, उन्नतचित्त संयमी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी करने में निपुण, शत्रु पर आपत्ति देखकर उसपर चढ़ाई करने वाला, अपनी विपत्ति में सेना की रक्षा करने में समर्थ किसी के द्वारा किए गए अपकार का प्रतीकार शास्त्र "अर्थशास्त्र" के अनुसार करने में निपुण, लज्जाशील, सुभिक्ष और दुर्भिक्ष में अन्न के विनियोग का उचित प्रबन्ध करने में पटु, दूरदर्शी, सैन्यसंचालन में निपुण, सभी प्रकार की सन्धि और सभी प्रकार के युद्ध करने में कुशल, अपने कोश को बढ़ाने में तत्पर, शत्रुपक्ष में गुप्तचरको नियुक्त करने में चतुर, किसी की दीनता पर हंसी उड़ाने में असमर्थ, मिथ्य-क्रोधी बड़ों के न उपदेश को मानने वाला दुष्टों, चुगुलखोरों से दूर रहने वाला, प्रियम्बद, हंसमुख, उदारभाषी राजा ही आत्मसम्पद् गुणसम्पन्न माना गया है ।

आत्मसम्पद् के अन्तर्गत जनपद सम्पत्, दुर्गसम्पत्, कोशसम्पत्, दंड सम्पत्, मित्र-सम्पत्, जनशत्रुसम्पत्, राज सम्पत् भी हैं ।

जनता को हर प्रकार की देवी, मानुषी विपत्तियों से रक्षित रखना जनपद राज्य और प्रजा की रक्षा के लिए दुर्ग, निर्माण और उनकी रक्षा का विधान दुर्गसम्पत्, धर्मपूर्वक कमाए हुए धन से परिपूर्ण खजाना और उसका उपयोग प्रजा के हित, उन्नति में करना कोशसम्पत्, खान्दानी, कुशल, कृतज्ञ, स्वामिभक्ति स्वस्थ, साहसी सैनिकों को सेना में भरती करना दंडसम्पत् है । अवसर पर बिना बुलाये सलाह और सहायता देने में तत्पर, निःस्वार्थी, कुलीन सदैव हितचिन्तक मित्रों को मित्रसम्पत्, इससे विपरीत अनेक दोषों से युक्त अमित्र शत्रु सम्पत् । और राजा को छोड़कर बाकी सभी प्रकृतियाँ अपने अपने गुणों से युक्त एक दूसरे की अंगभूत होकर राजा और राज्य के हित में कार्य करती हुई "राजसम्पत्ति" कही जाती है ।

राजसिंहासन पर अभिषिक्त राजा को स्वामी या राजा कहा जाता

था। कौटल्य ने राजा और उसके मित्र राजा को राजा माना है। शेष पाँच प्रकृतियों को राज्य का राष्ट्र माना है।

राजा

अर्थशास्त्र राजा को राजनीति और शासन का सूत्रधार ही न मानकर उसे राजर्षि मानता था, इसलिए राजा के लिए उसमें जो नियम और विधान हैं, उनसे राजा को राजर्षि बनाना ही है। इन्द्र, धर्म और यम से उसकी तुलना की गयी है। वह विध्वंसक नहीं बल्कि श्रेय, कल्याण का सम्पादक और निर्माता एवं असत् का विनाशक है। राजा का अपमान किसी को भी न करना चाहिए क्योंकि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। कौटल्य ने धर्मानुकूल आचरण करने वाले राजा को ही ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न माना है। और राजा के उस जुरमाने का उपयोग प्रजा के हित के कार्यों में मान है। अयोग्य राजा को पदच्युत करने तथा अधर्मी, अन्यायी और व्यभिचारी राजा का वध करने का भी विधान है। कौटल्य राजा उसी को मानता है, जो आभिगामिक और आत्मसम्पत् गुणों से पूर्ण हो। राजा वही है, जिसमें नैतिक गुणों का प्राचुर्य हो। ये गुण जन्म, जाति स्वभाव और अर्थ अभ्यास द्वारा राजा में आते हैं। इसलिए कुलीन, आभिजात्य वंश और उच्छ्रोत्र की शिक्षा का विधान रखा गया है। इसी प्रकार राजकुमारों की शिक्षा के लिए भी पूर्ण प्रबन्ध और विधान है। कौटल्य का कहना है, कि सुशिक्षित राजा समस्त प्राणियों का हित करता हुआ निष्कण्टक राज्य कर सकता है। प्रत्येक राजकुमार को जन्म से ही सुयोग्य आचार्यों, सेवकों और उत्तम दातावरण में रखा जाय। मुंडन संस्कार के बाद ही उससे वर्ण-माला और गणना जवानी सिखायी जाय। १६ वर्ष तक राजकुमार ब्रह्मचर्य का पालन करे। शास्त्रज्ञान के लिए वृद्ध पुरुषों का सत्संग करे। शस्त्र और शास्त्रज्ञान का अर्जन प्रतिदिन नियमानुसार करे इन्द्रियजित्, निर्लोभ निरलस, साहसी तथा उत्साही बने। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और हर्ष से दूर रहे। विवेकी और अन्वीक्षण शक्ति सम्पन्न बने। मानवी स्वभाव और व्यवित्तव को कमजोर बनाने वाले, द्यूत, मद्य, मृगया, स्त्री-प्रसंग

आदि व्यसनों से राजा दूर रहे। जो राजपुत्र इन समस्त गुणों से सम्पन्न हो उसी का रीज्याभिषेक किया जाय। कौटल्य का कहना है कि जितेन्द्रिय व्यक्ति ही हर काम में सफल हो सकता है, इसलिए राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए। सत्संग जीवन निर्माण का प्रमुख साधन है, इसलिए राजा को वृद्धों, विद्वानों का सत्संग करना चाहिए। प्रजा के सुशिक्षित विनीत, और धन-धान्य सम्पन्न होने पर ही राजा और राज्य की सम्पन्नता और समृद्धि निर्भर है। इसलिए राजा प्रजा को सुशिक्षित और समृद्ध बनाने की हर चेष्टा करे। वह प्रजानुरंजक बने। अधर्म, अनर्थ और अनाचार से स्वयं दूर रहे तथा प्रजा को भी दूर रखे। राजा स्वयं तथा अपनी प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रयुक्त करे।

राजा लोकमत और साधुमत का आदर करके राज को चलाये, ब्राह्मण, संन्यासी तथा अन्य इसी कोटि के निर्लोभ निष्काम व्यक्तियों के निस्वार्थ परामर्श और आदेश का समादर राजा को करना पड़ता था। कौटल्य ने राजकोश पर प्रजा का अधिकार माना है, और राजा को उसका केवल रक्षक। इसलिए अर्थशास्त्र का विधान है, कि राजा अपने समान गुणवाले राजकर्मचारियों से तिगुना वेतन ग्रहण करे। जब राजा राजसूय यज्ञ करे तो सारथि को एक हजार पण पुरस्कार दिया जाय। प्रधानमंत्री और प्रधान सेनापति को ४८ हजार पण वार्षिक वेतन दिया जाय। राजमाता, राजमहिषी और भुवराज को भी उचित भत्ता वेतन देने का नियम अर्थशास्त्र में है।

राजा की दिनचर्या

राजा प्रमादी, उन्मादी, कामासक्त और आलसी न हो जाय इसलिए कौटल्य ने उसकी दिनचर्या भी निश्चित कर दी है। जिने राज्य और प्रजा का वह भली भाँति सम्पादन कर सके। दिन और रात को आठ भागों में विभक्त कर कौटल्य लिखता है, कि राजा दिन के पहले आठवें भाग में राज्य की रक्षा संबंधी बातें करें, पिछले दिन दैनिक आय, व्यय सुने, दूसरे हिस्से में पीर जानपद के कर््यों का निरीक्षण करे, तीसरे भाग में स्नान भोजन

कर कुछ स्वाध्याय करे, चौथे भाग में दिन के शेष धन का लेखा जोखा करे, दैनिक कार्यों में सम्पादन के लिए भिन्न भिन्न कामों पर अध्यक्षा की नियुक्ति करे, पाँचवें हिस्से में मंत्रिपरिषद् की सलाह से आवश्यक वैदेशिक और राजकीय कार्य करे, गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करे, उनकी ग़ातों को सुनकर उनपर अमल करने के लिए विचार करे, छठे हिस्से में कुछ मन्त्रवहलाव और आवश्यकतानुसार मंत्रणा करे, सातवें हिस्से में सेना के प्रमुख साधन, हाथी, घोड़ा और रथों का निरीक्षण करे, आठवें हिस्से में सेनापति के साथ युद्ध सम्बन्धी मंत्रणा करे। दिन छिप जाने पर सायंकाल संध्योपासन करे।

रात्रिचर्या

रात के प्रथम भाग में गुप्तचरों का निरीक्षण करे, दूसरे भागमें भोजन और फिर स्वाध्याय करे, तीसरे भाग में ललित कलाओं के आयोजन में भाग लेकर सो जाय। चौथे और पाँचवें भाग में सोता रहे, छठे भाग में मंगल गान मंगल वाद्य सुनते ही जग उठे, सातवें भाग में दिन में किये जाने वाले कार्यों का चिन्तन करे, और गूढ़ बातों पर विचार करे, गुप्तचरों को उनके कार्यों में नियुक्त करे, आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्यों और पुरोहितों के साथ साथस्वस्तिवाचन, मंगलपाठ करता हुआ उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे और चिकित्सक, महानसिक एवं मीहूतिक से भेंट करे इसके बाद दूध पिलाती हुई गौ की प्रदक्षिणा करके वह दरबार में जाय।

राज दरबार के नियम

प्रजा के साधारण से साधारण व्यक्ति से भी राजा भेंट करे, उसकी बातें मनोयोग से सुने, संत्रियों, अमात्याओं को यह आदेश दे दे कि आम दरबार में किसी को आने से न रोका जाय। वह देवाल्यों, आश्रमों, शराब, जुएँ और व्यभिचारियों के अड्डों, वेदपाठियों के स्थानों, विद्यावाश्रमों, अन्नाथालयों का स्वयं निरीक्षण करे।

कौटल्य का कहना है, कि विद्या, बुद्धि, विवेक आदि सभी गुणों से

युक्त अमात्य की नियुक्ति की जाय। कौटल्य अमात्य उन्हीं को कहता था जिसे आजकल सिविल सर्विस कहा जाता है। जनपद तथा दुर्ग आदि के कार्यों की सफलता, राजपरिवार, अन्तपाल की ओर से योग धेम का साधन आपत्तियों से बचाव, निर्जन प्रदेशों को बसाना, अपराधियों को दंड देना, राजकर संग्रह करना, आदि सब काम अमात्यों के हैं।

मन्त्री और मन्त्रि परिषद्

अर्थशास्त्र का कहना है, कि मंत्री वही है, जो राजा के साथ एकान्त में मंत्रणा करे। मन्त्रिपरिषद् के सदस्य राजा के साथ एकान्त में मंत्रणा न कर परिषद् के खुले अधिवेशन में विचार व्यक्त करते थे। जरूरत पड़ने पर राजा मन्त्रि परिषद् के सदस्यों से भेंट कर या पत्र व्यवहार कर उनके विचार जानता था, मन्त्रिपरिषद् में व्यक्त किए हुए सदस्यों के विचारों को राजा मानता था।

मंत्रणा के पांच अंग

१. नये कामों का प्रारम्भ करने तथा अधूरे कामों को पूर्ण करने की योजना पर विचार
२. ऐसी योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक धन-जन की सहायता की व्यवस्था करना
३. किसी अभीष्ट काम के लिये स्थान और समय पर विचार।
४. अकस्मात् आने वाली विपत्तियों के प्रतीकार के लिए विचार।
५. कार्य-सिद्धि पर विचार।

कौटल्य का कहना है कि दीर्घकाल तक मंत्रणा न की जाय, जैसी जरूरत हो उसी के मुताबिक एक-एक मंत्री से राय ली जाय अथवा सबसे सामूहिक राय ली जाय। जहाँ मंत्रणा की जाय वह स्थान अत्यन्त गुप्त हो, वहाँ वही पुरुष प्रवेश कर सकें जो अत्यन्त विश्वस्त और आत्मीय हों, मंत्रणा का स्थान चारों ओर से इस प्रकार ढका हो कि दीवारों से बाहर शब्द न जा सके, मंत्रणा में सम्मिलित यदि कोई व्यक्ति मंत्रभेद कर

दे तो उसका बध करा दिया जाय । मंत्रणाकाल में राजा अपने मनोभावों को छिपाए रखने की चेष्टा करे, उन्हें व्यक्त न होने दे ।

मंत्रियों की नियुक्ति

जिसे मंत्री बनाया जाय उसकी अनेक प्रकार से गुप्त और प्रकट परीक्षा ली जाय, बुद्धि, मेधा, स्वभाव, कुलीनता, साहस, धैर्य, शक्ति, विद्या विनय, विवेक आदि सबकी परीक्षा करने के बाद किस व्यक्ति को मंत्री बनाया जाय । अथवा सभी प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण योग्य प्रामाणिक अमात्यों में से ही मंत्री चुन लिया जाय । लेकिन अमात्यों की नियुक्ति भी उनके कार्य और स्वभाव से की जाय जैसे :

धर्मोपधा द्वारा परीक्षा किये जाने के बाद योग्य प्रमाणित हुए व्यक्ति को 'धर्मस्थ' और कंटक शोधन अध्यक्ष बनाया जाय । अर्थोपधाशुद्ध व्यक्ति को समाहर्ता और सन्निधाता बनाया जाय । कामोपधा शुद्ध व्यक्ति को क्रीड़ा स्थानों का प्रधान रक्षक बनाया जाय । भयोपधाशुद्ध व्यक्ति को राजा अपने समीप "अंग रक्षक बनाकर" रखे । और जरूरत पड़ने पर इन्हीं में से मंत्री भी चुन लिया करे ।

शासन

लिखित राज्ञाज्ञा को 'शासन' कहा जाता था । शासन ही प्रामाणिक और मान्य समझा जाता था ।

प्रमुख राज्य कर्मचारी और उनके कार्य

मंत्री-राजा का सर्वोच्च पदाधिकारी मंत्री "प्रधानमंत्री" होता था, वह कुलीन, अपने ही देश में उत्पन्न, कलाप्रवीण, अर्थशास्त्रविद्, कुशल-योद्धा, स्मृति, में, बुद्धि से सम्पन्न, वाक्दूक और वाग्मी प्रगल्भ, क्षिप्रोत्तर देने में समर्थ, उत्साह, धैर्य, विवेक सम्पन्न, कोमल और पवित्र हृदय, लोकप्रिय, धार्मिक, निरलस, अप्रमादी, निरभिमानी, स्वस्थ, सुन्दर, सौम्य, और राजा प्रजा का भक्त आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न होता था ।

राजा अमात्यों की नियुक्ति, गुप्तचरों की नियुक्ति, देश की रक्षा,

विदेशों से राजनीतिक संबंध जोड़ने आदि के कामों में प्रधानमंत्री से सलाह लेता था ।^८

२. पुरोहित

चारों वेदों, छहों शास्त्रों, अठारहों प्रकार की विद्याओं का पूर्ण ज्ञाता विद्वान् लोक व्यवहार में कुशल, कुलशील, विवेक सम्पन्न, बाह्यण ही राज पुरोहित नियुक्त किया जाता था जो शासन कार्यों में राजा की सहायता सलाह देकर ही नहीं करता था बल्कि स्वयं युद्ध भी किया करता था । राजा पुरोहित का अनुचर बनकर उसकी आज्ञाओं का पालन किया करता था, राजा उसे अपने से भी ऊपर समझ कर उसका सम्मान करता था ।

३. सेनापति

यह एक प्रकार का युद्धमंत्री होता था, जिसके अधीन नावाध्यक्ष, रक्षाध्यक्ष, पत्यध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष तथा गोऽध्यक्ष रहा करते थे । इस पद पर प्रायः युवराज और राजकुमार ही रखे जाते थे ।

४. युवराज—राजा के रहते हुए युवराज राज्यशासन के विविध विभागों और कार्यों में अनुभव प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया जाता था । प्रायः किसी प्रदेश का गवर्नर उसे बनाया जाता था या सेनापति का भार प्रदान किया जाता था ।

५. दौवारिक—यह अमात्यों में से प्रधान व्यक्ति होता था जो राजमहल का संरक्षण करता था । दौवारिक का अर्थ द्वारपाल या चौकीदार नहीं है ।

६. अन्तर्गेशिक—यह राजा का प्रधान अंग रक्षक और सेना का प्रधान आफिसर होता था । इसके अधीन एक सेना रहती थी जो राजा और उसके अन्तःपुर की रक्षा के लिए नियुक्त रहती थी । राजा के हर काम, आचरण और रहन सहन के निरीक्षण का भार अन्तर्गेशिक के ऊपर रहता था । बहुत ही विश्वस्त, कुलीन, समस्त सद्गुणों से युक्त व्यक्ति ही इस पद पर ही इस पद पर नियुक्त किया जाता था ।

७. प्रशास्ता—कंटकशोधन अध्यक्ष का ही नाम 'प्रशास्ता' था। युद्ध भूमि के निकट जो सैनिक छावनी बनायी जाती थी, वहीं प्रशास्ता की भी नियुक्ति की जाती थी। वह राजा के जाने से पूर्व शिल्पी, कर्म-करों को साथ लेकर मार्ग में रक्षा का प्रबन्ध कर सुविधाएं करता हुआ स्कन्धावार में पहुँचता था।

८. समाहर्ता—राज्य की समस्त आमदनी को शासन विभागों के भिन्न भिन्न अध्यक्षों द्वारा एकत्र कराकर समाहर्ता उस आमदनी को राजकोश में जमा करता था। इसे मजिस्ट्रेट के भी पावर थे। अभियोगों का निर्णय भी करता था। इसके अधीन निम्नांकित विभाग और उनके अध्यक्ष काम करते थे।

आकराध्यक्ष—खनिज पदार्थों के सुवर्णाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष, लोहा-ध्यक्ष, खान्याध्यक्ष, आदि ।

कुप्याध्यक्ष—जंगल विभाग का अधिकारी

पण्याध्यक्ष—व्यापार क्रय-विक्रय का अधिकारी ।

आयुधागाराध्यक्ष—अस्त्र शस्त्र का अधिकारी ।

मौतवाध्यक्ष—नाप तौल का अधिकारी

मानाध्यक्ष—भूमि और समय नापने का अधिकारी ।

शुल्काध्यक्ष—कर, 'टैक्स' वसूल करने का अधिकारी ।

सूत्राध्यक्ष—सूत्र, पुतलीघर, कताई आदि का अधिकारी ।

सीताध्यक्ष—कृषि विभाग का अधिकारी ।

सुराध्यक्ष—आवकारी विभाग का अधिकारी ।

सूनाध्यक्ष—कसाई खाने का अधिकारी ।

गणिकाध्यक्ष—वेश्यालयों का अधिकारी । इसके अधिकार में समस्त नट, नर्तक, कुशीलव गायकवादक, जादूगर, बाजीगर, आदि रोजगारियों की देखभाल थी ।

नावध्यक्ष—समुद्री व्यवसाय, जहाज, नाव, नदी विभाग का अधिकारी

गोष्ठ्यध्यक्ष—पशु विभाग का अधिकारी ।

अश्वाध्यक्ष—घोड़ों का अधिकारी ।

हस्त्यध्यक्ष—हाथियों का अधिकारी ।

रथाध्यक्ष—रथों का अधिकारी ।

मुद्राध्यक्ष—आयात-निर्यात का अधिकारी ।

विवीताध्यक्ष—जंगली रास्तों, गोचरभूमि और सीमान्त के व्यापार विभाग का अधिकारी ।

लक्षणाध्यक्ष—टकसाल का अधिकारी ।

देवसाध्यक्ष—देवालयों का अधिकारी ।

उपर्युक्त सभी अध्यक्ष अमात्यगुणों से युक्त होते थे । इनके कार्यों का निरीक्षण राजा स्वयं करता था । इन अध्यक्षों के नीचे सख्यायक (एकाउंटेंट) नीची ग्राहक (आय-व्यय से बचे हुए शेष धन का हिसाब रखने वाले) रूप दर्शक (मुद्राओं के खरा-खोटा परखने वाले) लेखक (क्लर्क) और आराध्यक्ष यह अत्यन्त वृद्ध, परम अनुभवी होता था) जो सब के कार्यों को देखता था) काम करते थे ।

९. सन्निधाता—सन्निधाता के नियम कर्म के अन्तर्गत कोषगृह, पण्य-गृह, कोष्ठागार (खाद्य पदार्थों का गोदाम) कुप्यागार जंगली पदार्थों का गोदाम), आयुधागार (शस्त्रास्त्रों का गोदाम), बन्धनागार (जेलखाना) आदि का निर्माण तथा विशेषज्ञों से चारिख कटा कर स्तनों को कोश में रखना, भीतरी बाहरी नयी वा पुरानी सभी प्रकार की आमदनी का ज्ञान रखना आदि काम थे ।

१०. प्रदेष्टा—क्रिमिनल केसों का फैसला करने वाला मुख्य न्यायाधीश भी प्रदेष्टा कहलाता था । समाहर्ता, सन्निधाता से मिलकर विभागीय अध्यक्षों की नियुक्ति करने, राजकर्मचारियों को रिश्वत आदि से रोकने के काम प्रदेष्टा के थे ।

११. नायक—सेना के मुख्य सेनापति को नायक कहा जाता है, इसके अधीन सैनिक शिविरों के निर्माण, युद्ध क्षेत्र में खाइयाँ, शहरपनाह, भट्ट टालिकाये आदि बनवाने के काम थे ।

१२. पौरव्यावहारिक— 'धर्मस्थीय' (न्यायालय) का मुख्य न्यायाधीश पौर व्यावहारिक कहलाता था कहीं कहीं इसे सिटी कौतवाल या सरकारी वकील भी लिखा गया है ।

१३—कुर्मान्तिक—खदान, खेतों में उत्पन्न होने वाले कच्चे मालों को तैयार करने के लिए कारखानों में भेजना उनका निरीक्षण रखना आदि काम उसके आधीन था ।

१४—मन्त्रिपरिषदाध्यक्ष—मन्त्रिपरिषद का अध्यक्ष महामात्य कहलाता था कदाचित् आजकल का वह स्पीकर था ।

१५—दण्डपाल—सेना विभाग का गवर्नर दंडपाल कहलाता था समस्त सैनिक प्रवृत्तियाँ उसी की देख-रेख में सम्पादित होती थीं ।

१६—दुर्गपाल—राज्य के आन्तरिक भागों के किलों का प्रधान अधिकारी दुर्गपाल था ।

१७—अन्तपाल—सीमान्त प्रदेशों का प्रधान रक्षक अधिकारी अन्तपाल कहलाता था ।

१८—आटविक—जंगलों तथा कवायिली जातियों पर देख-रेख रखने वाला अधिकारी आटविक कहा जाता था ।

गुप्तचरों के भेद और कार्य— 'संस्था' और संचार' दो प्रकार के गुप्तचर होते थे । काटविक (विद्यार्थी वेश में रहने वाले), उदास्थित (संन्यासी बन कर विद्यार्थियों सहित कृषि, व्यापार करने वाले) गृहपतिक (राज्य की ओर से दी गयी भूमि पर जख्ख किसान बनकर खेती करने वाले), वैदेहक (गरोब व्यापारी बनकर व्यापार करने वाले), तापस (साधु के वेश में रहकर शिष्यों सहित उपदेश चर्चा करने वाले) गुप्तचर 'संस्था' कहलाते थे? क्योंकि यह एक ही जगह स्थित रहते थे । और सभी (अनेक विद्याओं और कार्यों के ज्ञाता), तीक्ष्ण (छिपकर शस्त्र से हत्या करने वाले), रसद (विष आदि प्रयोगों द्वारा हत्या करने वाले) भिक्षुकी (स्त्री गुप्तचर जो राजमहलों में जाती थी) ये गुप्तचर संचार कहलाते थे । क्योंकि ये घूमा करते थे । इनके अतिरिक्त, सिद्ध, तपस्वी,

परिव्राजक, ऐन्द्रजालिक, कार्त्तान्तिक (ज्योतिषी) नट, नर्तक, कुशीलव, वैद्य, भांड, (शराब बेचनेवाले) मिठाई बेचनेवाले, खोमचा लगाने वाले, भोजन बनाने वाले आदि अनेक क्षात्र वेषधारी गुप्तचर थे। इनका काम प्रजापीडकों का पता लगाना, राज्य के शत्रुओं को विनष्ट करना था।

पौरजानपद के कार्य—शासन व्यवस्था संचालन करने से संबंधित नगर और देहात की प्रतिनिधि संस्थाएं पौरजानपद कहलाती थीं। दोनों को समान अधिकार और पद प्राप्त थे कदाचित् आजकल की व्यवस्थापिका सभाओं की भांतिवे रही होंगी। तीर्थ, सभा, शाला, समवाय, पूगसमवाय और जन समवाय पौर की उपसमितियाँ थीं। जो तीर्थ स्थानों, कला, कौशल व्यापार और सार्वजनिक सभाओं का निरीक्षण और व्यवस्थापन करती थीं।

स्वायत्तशासन—अर्थशास्त्र में हर जनपद को चार भागों में विभक्त कर शासन करने का विधान है। उनका निरीक्षण समाहर्त्ता किया करता था। विभक्त चारों भागों का नाम 'स्थानीय' था और हर एक 'स्थानीय' का प्रधान शासक स्थानिक कहा जाता था। प्रायः राजघराने के लोग ही स्थानिक बनाये जाते थे। सीमान्तप्रदेशों का अधिकारी अन्तपाल कहलाता था। स्थानिक के नीचे 'राजुक' और 'प्रादेशिक' अधिकारी हुआ करते थे। जो आजकल के कमिश्नरों के तुल्य थे। उनके नीचे युक्त और 'उपयुक्त' पदाधिकारी होते थे, जो अर्थ-संग्रह का काम करते थे।

जनपद निवेश—स्थानीय आदि की स्थापना—खेतिहर और मजदूर वर्ग की अधिक आवादी से पूर्ण कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक ५ सौ घरों का एक गाँव बसाया जाता था,, प्रत्येक गाँव दूसरे गाँव एक या दो कोस के फासले पर होता था। नदी, पहाड जंगल, बेरों शमी, बरगदी के वृक्षों की ग्राम सीमायें बनायी जाती थी। आठ सौ गाँवों को जोड़ कर एक 'स्थानीय' की स्थापना की जाती थी। चारसौ गाँवों के समूह में 'द्रोणमुख' दो सौ गाँवों के समूह में 'खार्वटिक' और दस गाँवों

के समूह को मिलाकर एक 'संग्रहण' स्थापित किया जाता था। संभवतः स्थानीय, द्रोणमुख; खार्वाटिक और संग्रहण आजकल के जिब्ला, तहसील, नोटीकाइड-एरिया और टाउन एरिया की भांति होते रहे होंगे।

गांवों के विभाजन— उस समय ऋत्विकों, पुरोहितों, श्रोत्रियों, सैनिकों आदि के गुजारे के लिए गांव दिए जाते थे, जिनसे कर नहीं लिये जाते थे इसलिए समाहर्ता अपने कागजात में हर गांव की आबादी, आमदनी, क्षेत्रफल, उपज आदि का व्योरा अलग अलग लिखा करते थे। दान में दिए गए निःशुल्क गांवों का हिसाब किताब अलग लिखा जाता था जो गांव कर दिया करते थे वे तीन प्रकार के थे।

१—सैनिक योद्धा देनेवाले २—अन्न पशु, हिरण्य देने वाले और ३—सरकारी काम के लिए मजदूर देने वाले।

गोप— पांच या दस गांवों का मालिक गोप कहलाता था। वह गांवों की सीमा निश्चित करता था, वह भूमि विभाजन कर यह व्योरा रखता था कि कितनी भूमि खेती के योग्य है, कितनी ऊसर, बंजर, दलदल बलुहाई है। कितने में नदी तालाब, बगीचा, नहर, मकान, बाँध, चरागाह, तीर्थस्थान, मन्दिर, स्मशान आदि हैं।

हर प्रकार के रास्तों, जंगलों और उनके मार्गों तथा खेती से पैदा होने वाली वस्तुओं की बिक्री का और दानधर्मादा तथा सरकारी दैक्स का विवरण रखता था।

कितने भेकानों पर कर लगता है, कितने पर नहीं, हर घर में कितने मनुष्य हैं, कितने पुरुष, कितनी स्त्रियाँ, कितने बूढ़े और कितने बालक हैं। कितने रोज मरे हैं और कितने पैदा हुए हैं। गांव भर में कितनी जाति के लोग रहते हैं। कितने चरवाहे हैं, कितने हलवाहे हैं कितने कारीगर और व्यापारी हैं। पशुओं की कितनी जातियाँ और संख्याएँ हैं। कितने नौकर हैं, गांव भर की सम्पत्ति कितनी है। कितनी आमदनी है कितना दण्ड लोगों ने दिया है। इत्यादि हर बात का विवरण उसे राजा को देना पड़ता था। यही नहीं सभी ग्रामवासियों के आचरण, चरित्र

का भी उसे ध्यान रखना पड़ता था और उनको सुधारने का दायित्व उस पर रहता था ।

ग्रामिक— हर गाँव का मुख्य अधिकारी ग्रामिक कहलाता था । उसे दंड देने का भी अधिकार था । वह चोरों, व्यभिचारियों को गाँव से बाहर भी निकाल देता था । ग्राम संघ के आदेशों पर ग्रामिक अमल करता था ।

ग्राम्य-शासन— गाँवों के शासन के लिए ग्राम संघ, कुल संघ, जाति संघ और देश संघ स्थापित थे । जो हर गाँव के निवासियों के चरित्र, आचरण और व्यवहार का निरीक्षण करते थे । अपराध करने पर दंड देते थे । ग्राम संघ ग्रामिक को उसके गाँवों के सुधार के लिए आर्थिक सहायता भी दिया करता । हर गाँव में मनोरंजन के सार्वजनिक स्थान बने हुए थे । ग्राम्य शासन-प्रबंध में सामूहिक हित का विशेष ध्यान था परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमेशा तैयार रहते थे । सामूहिक हित-कार्यों में राजा भी मदद करता था । बाँध बाँधने, तालाब खोदने आदि के कार्य गाँव वाले मिलजुलकर करते थे । जो धन से सहायता न कर सकता था वह परिश्रम करता था या नौकरों को उस कार्य में लगाता था । जो कुछ भी नहीं करता था, उसे उस पस्तु का उपयोग नहीं करने दिया जाता था । ऐसे कामों के लिए राज्य की ओर से तकावी मिला करती थी । गाँव वाले मिल कर नट, नर्तक आदि के खेल कराते थे । सब लोग चन्दा देते थे । जो चन्दा नहीं देता था उसे और उसके परिवार वालों को वह तमाशा नहीं देखने दिया जाता था । इसी प्रकार पंचायतो खेती भी की जाती थी, जो उसमें शामिल नहीं होत था, उसे जुरमाना किया जाता था । जो लोग सार्वजनिक हित के लिये कुछ सड़कें बगीचे आदि बनाते थे । राजा उनका बहुत ख्याल रहता था ।

शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए जनपदों में एक प्रकार का 'गुण्डा' एकट लागू था । जिसके अनुसार आवारा, गुंडा लोग, वहाँ घूमने

नहीं पाते थे। यहाँ तक कि संन्यासियों को भी जनपदों में प्रवेश करने की मनाही थी। केवल वानप्रस्थ ही जा सकते थे।

पारिवारिक-विधा—बेकारी, आवारागर्दी बढ़ने न पाये इसलिए परिवार के पुंसे लोगों पर भी दंड विधान निश्चित तथा जो अपने स्त्री-वच्चों की परिवारिश नहीं कर सकते थे। हाँ यदि वे पतित न हों तो उनकी परिवारिश का दायित्व नहीं रह जाता था। पुत्र, स्त्री के रहते हुए जो संन्यासी होना चाहता था या स्त्री को भी संन्यासिनी बनाना चाहता था उसे अपराधी घोषित कर दंड दिया जाता था।

नगर प्रबन्ध—ग्राम प्रबन्ध की भांति ही नगरों का भी प्रबंध होता था, गोप, स्थानिक और नागरिक नगरों के मुख्य प्रबन्धक थे धर्मशालाओं में तीर्थस्थानों, मन्दिरों आदि में ठहरना चाहते थे उन्हें गोप से आज्ञा लेनी पड़ती थी। व्यापारी अपने आड़तियों को ठहरा सकते थे किन्तु भाव बेभाव चीज ब्रेचने पर उन्हें गोप को सूचित करना पड़ता था। प्रत्येक नगर-वासी को यह आदेश था कि वह फिजूलखर्च, आवारागर्द लोगों की रिपोर्ट गोप से करें। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ज़ुलम का उपचार छिपकर करता था और डरकर उसकी सूचना गोप को नहीं देता था तो डाक्टर दंडनीय समझा जाता था। जिसके घर में गुप्त उपचार होता था उस घर के मालिक को भी सजा दी जाती थी। नगरों की सफाई और सुरक्षा के अनेक नियम बने हुए थे। घर के ऊपर से गली या सड़क पर कूड़ा फेकने थूककर, पानी बहाकर गन्दा कर देने पर जुर्माना किया जाता था। नागरिक स्वयं शहर भर में धूम-धूम कर पहरा देता था, जो राजकर्मचारी नियमोल्लंघन या प्रमाद करते थे उन्हें भी सजा दी जाती थी।

कृषि-विधान—खेती की उपज बढ़ाने तथा किसानों को सुखी, सम्पन्न और स्वस्थ बनाये रखने के लिए राज्य की ओर से अनेक साधन और सहायता प्रदान की जाती थी। किसानों को सेना में नहीं भरती किया जाता था। सीताध्यक्ष ऋतुओं का भूविष्य जानकर किसानों को सूचित करता रहता था, आवश्यकता पड़ने पर राज्य की ओर से बीज, पशु

आदि की सहायता भी दी जाती थी। उनको स्वस्थ रखने के लिए राज्य की ओर से जो आर्थिक सहायता दी जाती थी उसे अनुग्रह कहते थे। और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने के लिए द्रिष्टि गण धन को परिहार कहा जाता था। किसानों को दण्ड देते समय और उन पर कर लगाते समय यह ध्यान रखा जाता था, कि इससे खेती और उपज को कोई हानि तो नहीं पहुँचेगी। फसल के समय किसानों को ऋण आदि के मामले में गिर-फ्तार नहीं किया जाता था। गोऽध्यक्ष किसानों को पशुओं की नस्ल सुधारने उन्हें स्वस्थ दीर्घजीवी बनाये रखने के लिए तथा विवीताध्यक्ष चरागाहों में चारा उपजाने उसे सुरक्षित रखने और संग्रहीत करने के लिए सचेष्ट रहा करते थे। जंगली जानवरों, चूहों, चोरो आदि से खेती की रक्षा का प्रबन्ध राज्य करता था। दैवी आपत्तियों से मुक्त रखने के लिए अनुष्ठान और यज्ञ भी कराये जाते थे।

पण्याध्यक्ष इस बात का ख्याल रखता था कि व्यापारी प्रजा को ठगते तो नहीं हैं, वह उनके बटखरों की देख-रेख करता, काँटा, तुला आदि की परीक्षा करता था, घटा बढ़ाकर तौलने या भाव-बेभाव बेचने पर व्यापारियों को दण्ड दिया जाता था। यौतवाध्यक्ष और पण्याध्यक्ष देशी तथा विदेशी व्यापारों के प्रति सचेष्ट रहते थे।

सार्वजनिकहित—सार्वजनिकहित के हित के लिए राज्य की ओर से औषधालय, कुयें तालाब, आरामघर, बगीचे, मन्दिर, चैत्य, धर्मशालाएं आदि का निर्माण कराया जाता था। आग लगने, जल की बाढ़ आने, दुर्भिक्ष पड़ने, हिंसक जन्तुओं के आक्रमण होने की आशंका और भय की पहले से ही निवारण किया जाता था। वाणिश्रम व्यवस्था के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध था। अनाथ विधवाओं को प्रश्रय दिया जाता था।

न्याय विधान—जनपद संधि, संग्रहण, द्रोणमुख में तीन धर्मस्थों (न्यायाधीश) और तीन अमात्यों का एक बेंच न्याय किया करता था। धर्मस्थीय न्यायालय के न्यायाधीश धर्मस्थ कहलाते थे कंटकशोधन न्याया-

लयों में तीन प्रदेष्टा और तीन अमात्य मिलकर कचहरी करते थे । में होता था और अनाचार, व्यभिचार, रिश्वतखोरी राज्य विरोधी मामलों का फैसला कंटक-शोधन न्यायालय में हुआ करता था । इन न्यायालयों में धर्मस्थी की अपेक्षा अधिक दंड दिया जाता था । इस अदालत में राजा और प्रजा के कंटकों (शत्रुओं) को दूर किया जाता था इसलिए कंटक शोधन कहा जाता था ।

इन अदालतों में मुख्यतया निम्नांकित विषयों पर विचार किया जाता था । — व्यवहार (शर्तनामा) विवाह, दायभाग, पुत्राधिकार, वास्तुक (खेत, मकान, तालाब, बाग का निर्माण तथा विक्री), स्वामि सम्बन्ध (जायदाद के स्वामित्व संबंधी); साहस (डाका, अपहरण) वाक्यारूप्य (गाली गलौज), दंड पारुष्य (मारपीट), द्यूतसमाह्वय (जुआँ, मुर्गा, तीतर की लड़ाई) और प्रकीर्णक अर्थात् विविध फुटकर विषय ।

कण्टक शोधन के विशेष न्यायाधिकार—कारक रक्षण (शिल्पियों की रक्षा और उनसे प्रजा की रक्षा), व्यापारियों की रक्षा तथा उनसे प्रजा की रक्षा, दैवी आपत्तियों का प्रतीकार (आग लगने, बाढ़ आने आदि सार्वजनिक, विपत्तियों पर जो सहायता नहीं देते थे उनको दंड देना), गूढा-जीवियों (व्यभिचारी, जुआरी, रिश्वतखोर आदि का प्रतीकार, कन्याओं और स्त्रियों पर बलात्कार, अतिचार (सामाजिक नियमों के विरुद्ध आचरण) इत्यादि विषयों से संबंधित अभियोगों का निर्णय कंटकशोधन न्यायालय द्वारा होता था ।

साक्षी के नियम—वादी और प्रतिवादी दोनों की सहमति से विश्वासी, सच्चरित्र, दो या तीन व्यक्ति साक्षी बनाये जाते थे । वादी या प्रतिवादी अकेले अपनी इच्छा से किसी को साक्षी नहीं बना सकता था । पैरोकार व्यक्ति, साला संबंधी, बन्धुआ, महाजन (उत्तमर्ण) धारणिक (अधमर्ण शत्रु, अंगहीन या राज्य से दंडित व्यक्ति साक्षी नहीं हो सकते थे । राजा, वेदवक्ता, ब्राह्मण, ग्रामिक कोढ़ी, पतित,

चाण्डाल, कुत्सित कार्यकर्ता, अंधे, बहरे, गुंगे, राजकर्मचारी आदि व्यक्ति अपने वर्ग को छोड़कर अन्यत्र साक्षी नहीं हो सकते थे ।

विभिन्न दर्जा वाले साक्षियों से उनकी जाति के अनुसार शपथ कराने का नियम था । शपथ ब्राह्मण द्वारा दिलायी जाती थी । साक्षियों को अग्नि, जल, और ब्राह्मण के पास खड़ाकर शपथ दी जाती थी । ब्राह्मण से सिर्फ 'सच बोलो' कहा जाता था । क्षत्रिय या वैश्य से कहा जाता था कि यदि तुम सत्य न बोलो तो तुम्हें अपने यज्ञ, धर्मशाला आदि पुण्य-वृत्तियों का फल न मिले और तुम शत्रु के यहाँ खप्पर लेकर भीख माँगते फिरो । शूद्र से कहा जाता था कि झूठ बोलने पर तुम्हारे जन्मजन्मांतर का पुण्य राजा को प्राप्त हो और राजा के सारे पाप तुम्हें लगें । झूठा न कहो साबित हो जाने पर तुम्हें दंड भी दिया जायगा । इसलिए तुम्हें सत्य बोलना चाहिए ।

दण्ड विधान—अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने जनता को सुपथ पर चलाने के लिए निष्ठुर-कठोर या तीक्ष्ण दंड देने का विरोध किया है । उसके मत से उचित दंड देना ही ठीक होता है क्योंकि कठोर दंड देने से प्रजा दुःखी होती है, राजा से उद्विग्न और खिन्न हो जाती है । साथ ही जो राजा दंड देने में कमो करता है, उसका प्रभाव घट जाता है । जनता उसका तिरस्कार करने लगती है । इसलिए जो राजा सोच समझ कर उचित दण्ड देता है वही जनप्रिय होता है ।

अर्थशास्त्र में अपराधियों को क्रोहे मारना, हाथ पैर बाँध कर उलटा टाँग देना और नाक पर पानी डालना, बेत मारना, छड़ी मारना, साखुनों में सुई चुभाना, शरीर का कोई अंग काट लेना इत्यादि शारीरिक और आर्थिक दोनों दंड एक साथ ही या केवल अर्थ दंड और बध दंड का विधान था । सरकारी कर्मचारियों को उनके ऊपर अपराधों के लिए साधारण जनता से अत्यधिक और कठोर दंड डिया जाता था ।

छोटी-छोटी चीजों पर डाका डालने पर १२ पण से २४ पण तक दंड दिया जाता था लोहा, रस्सी, छोटे-छोटे पशुओं आदि

की चोरी करने पर २४ पण वे ४८ पण तक दंड दिया जाता था, तांबा पीतल आदि साधारण धातुओं की बनी हुई वस्तुओं की चोरी करने पर ४८ पण से ९६ पण तक दंड दिया जाता था, इसे प्रथम साहस दंड कहा जाता था । इसी प्रकार बड़े-बड़े पशुओं, मकानों हिरण्य और सुवर्ण आदि वस्तुओं पर डाका डालने पर २०० पण से ५०० पण तक दंड दिया जाता था, इसे मध्यम साहस दंड कहते थे । किसी को बलात्कार बांधने या बांधने वाले तथा राजपुरुषों द्वारा बांधे हुए व्यक्ति को छुड़ाने वाले पर ५०० पण से १००० पण दंड दिया जाता था । उसे उत्तम साहस दंड कहा जाता था । यदि साधारण जनता जाली कागज या मोहर बनाती थी तो उसे प्रथम साहस दंड दिया जाता था । लेकिन यदि सरकारी विभागों के अध्यक्ष ऐसा अपराध करते थे तो उन्हें मध्यम साहस और गाँव के मुखिया को उत्तम साहस तथा समा-हर्त्ता को प्राण-वध का दण्ड दिया जाता था । यदि राजकर्मचारी जनता की कोई वस्तु चुरावें अथवा रिश्वत लेते थे तो उन्हें अपराध के अनुसार आर्थिक दंड देने के साथ ही उनके उनके मुँह और शरीर पर राख, कोयला प्रोतकर गंदहापर चढ़ाकर पीछे से ढिंढोरा पीटते हुए शहर भर में घुमाया जाता था । किसी-किसी अपराध में उनके मूँड़ मुड़वा कर पीछे से डेला मारते हुए निर्वासित किया जाता था । यदि कोई कर्मचारी १००० पण की चोरी करता तो उसे खुले आम फांसी दी जाती थी । कभी-कभी ५० पण तक की चोरी में भी प्राण दंड दिया जाता था । उठाईगीरों, जेबकतरों, उचक्कों, आदि को पहले आर्थिक और जेल की सजा दी जाती थी, दुबारा अपराध करने पर उनके शरीर का कोई अंग कट दिया जाता था । व्यभिचार और बलात्कार करने पर कठोर दंड दिया जाता था । कहीं अनैच्छेद कर दिया जाता था और वहीं प्राणदंड तक दिया जाता था । जेलखाने में जेल के राज कर्मचारी कैदियों पर मनमानी अत्याचार नहीं करने पाते थे । किसी कैदी की जगह बदलने या उके खाने-पीने में रुकावट या मिलावट करने पर कर्मचारी को ९६ पण दंड दिया जाता था, और

यदि किसी कैदी को कोड़े लगाये जाते या उससे रिश्वत ली जाती तो तो मध्यम साहस दंड दिया जाता था । यदि कर्मचारी कैदी को मारते-मारते उसका क्षेम कर डालते थे तो उन्हें एक हजार पण दंड दिया जाता था । कैदियों को उनके अपराध के मुताबिक समझाकर या शारीरिक दंड देकर अथवा अर्थ दंड लेकर छोड़ भी दिया जाता था । राजा के जन्म दिवस पर या कोई विशेष धार्मिक पर्व पड़ने पर बालक, वृद्ध, अनाथ और बीमार कैदी जेल से मुक्त कर दिए जाते थे । किसी नये देश को जीतने पर या राजपुत्र उत्पन्न होने पर कैदियों को उनकी सजा की अवधि पूरी होने से पहले छोड़ दिया जाता था ।

अधिकारी या पदाधिकारी अपराधियों, कैदियों या वादी, प्रतिवादी को डरा-धमका नहीं सकते थे । उन पर किसी प्रकार का रोब भी नहीं ग्राह्य कर सकते थे । यदि न्यायालय में न्यायाधीश वादी, प्रतिवादी या साक्षी को अंगुली दिखाकर, भौंह तानकर कुछ कहता, या घुड़कता था तो उसे प्रथम साहस दंड दिया जाता था । यही दंड उन्हें रिश्वत लेने पर भी दिया जाता था । यदि न्यायाधीश वादी-प्रतिवादी में से किसी एक का गुप्त रूप से पक्षपात करता था, किसी को नाहक परेशान करता था तो उसे पदच्युत कर दिया जाता था । इसी प्रकार प्रदेष्टा, यदि किसी निरपराध व्यक्ति को सुवर्ण दंड देता तो राजा उस प्रदेष्टा से उक्त दंड का दुगुना दंड लिया जाता था यदि वे शारीरिक दंड देते तो उन्हें भी शारीरिक दंड दिया जाता था । यहाँ तक कि मिथ्या दंड देने पर राजा और राजपुत्र भी दंडित किए जाते थे । व्यक्ति की परिस्थिति और अवस्था (हैसियत) को देख कर ही उसे दंडित किया जाता था । चारों वर्णों में से ब्राह्मण को दंड देने में अन्य वर्णों की अपेक्षा रियायत वरती जाती थी । इसी प्रकार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम दण्ड दिया जाता था । कुछ दशाओं में जैसे गर्भिणी, प्रसूता—स्त्री को बिल्कुल दण्ड नहीं दिया जाता था । न्यायाधीश जिसे दंडित करते थे उसके अपराधों पर भली भाँति स्वयं तथा महात्माओं से विचार-

विनिमय कर लिया करते थे। देश और काल की परिस्थिति देखकर ही दण्ड दिया जाता था। अपराध निश्चित होजाने पर ही दण्ड दिया जाता था, दानी, तपस्वी, वीमा, भूखे-प्यासे, थके-हारे, परदेशी, विध्वंस व्यक्तियों पर अनुग्रह भी किया जाता था। न्यायाधीश छल, कपट, पक्षपात और अन्याय रहित होते थे। धनवानों, पदाधिकारियों के साथ कोई रियायत नहीं की जाती थी। मुकदमे में वकील की जरूरत नहीं पड़ती थी, क्योंकि न्यायाधीश स्वयं नीरक्षीर विवेक रखते थे।

सैनिक विधान—पदाति सेना, अश्व सेना, हस्ति सेना, और रथ सेना ये सेना के चार अंग थे। इन चारों अंगों से युक्त सेना को चतुरंगिनी सेना कहा जाता था, इन चारों प्रकार की सेनाओं में हर सेना का एक अध्यक्ष होता था जिन्हें पत्यध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष और रथाध्यक्ष कहा जाता था। नौसेना के अधिकारियों को नावध्यक्ष कहा जाता था। प्रत्येक सेनांग के अधिकारी को 'पदिक' कहा जाता था। दस पदिकों के ऊपर एक सेनापति होता था और दस सेनापतियों के ऊपर एक नायक होता था।

राजधानी की रक्षा के लिये नियुक्त सेना 'मौल' किराये पर युद्ध करने वाली सेना, 'भृत', लड़ाकू जातियों की सेना 'श्रेणी', भिन्न राज्य की सेना 'मित्र', शत्रु राज्य की सेना 'अमित्र', जंगली सेना 'अटवी', राजा से स्वीकृत या अस्वीकृत नेतृत्वहीन भिन्न देशों में घूमने और लूटमार करने वाली सेना 'औत्साहिक' कहलाती थी। पत्यध्यक्ष इन सातों प्रकार की सेनाओं की सारता और असारता का ख्याल रखता था।

शत्रु से रक्षित रहने तथा विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध क्षेत्र में व्यूह रचना का महत्त्व विशेष था। घड़ियाल के मुंह के समान व्यूह को 'मकरव्यूह' दोनों ओर से शत्रु के आक्रमण से रक्षा के लिये बनाए जाने वाले व्यूह को 'वज्रव्यूह', चारों ओर से होने वाले शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये बनाए जाने वाले व्यूह को 'सर्वतोभद्र' और एक

ही आदमी के जाने योग्य मार्ग पर बनाये जाने वाले व्यूह को 'सूचीमुख' व्यूह कहा जाता था।

युद्धकाल में अनेक प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था जैसे—

स्थितयंत्र—यह एक ही स्थान पर गाड़कर या रखकर प्रयुक्त किया जाता था,

सर्वतोभद्र—इस यंत्र से चारों तरफ प्रहार किया जाता था।

जामदग्न्य—आग और गोला उगलने वाला बड़े मुँह का एक अस्त्र।

विश्वासघाती—ऐसा अस्त्र जिसे छूते ही छूने वाले की मृत्यु होती थी।

संवाति—इस अस्त्र से शत्रु पक्ष में आग लगायी जाती थी।

यावक—यह अस्त्र पहियेदार सवारियों पर रखकर चलाया जाता था।

पर्जन्यक—इसे वरुणास्त्र भी कहा जाता था, इससे आग बुझायी जाती थी।

ऊर्ध्वबाहु—एक ऊँचा और मोटा स्तम्भ जो पास आनेवाले को मारता था।

अर्धबाहु—अर्ध्वबाहु इससे परिमाण में आधा होता था।

उपर्युक्त यंत्र अस्त्र संज्ञक हैं जो फेंक कर चलाये जाते थे।

चल-यंत्र

पंचालित—लकड़ी का ऐसा हथियार जिसका अग्रभाग तेज होता था, और परकोटे के बृहत् पानी के बीच शत्रु को रोकने में काम आता था।

देवदण्ड—मोटा सौंटा जो परकोटों पर चढ़कर चलाया जाता था।

सुकरिका—सूत और चमड़े की बनी हुई ढाल।

मुसलयष्टि—एक प्रकार की लाठी जिसके सिरे पर लोहे का शूल रहता था।

हस्तिवारक—दो या तीन फन से युक्त हाथियों को मारने का अंकुश ।

तालवृन्त—चारों ओर घूमने वाला शस्त्र ।

मुद्गर, गदा, स्मृत्तला (काटेदार गदा) कुदाली, फावड़ा

दुधण—मुद्गर के समान एक शस्त्र, आस्फोटिम (गोफन) उद्घाटिम (मुद्गरके समान) शतघ्नी (एक प्रकार की तोप) त्रिशूल और चक्र । ये सब धनुष्य कहे जाते थे ।

भाला, बछी, करौली आदि तेज धार वाले शस्त्र हलमुख कहे जाते थे । ताड़, बाँस, लकड़ी और सींग के बने हुए धनुष क्रम से ताल, चाप, दारु और शार्ड कहलाते थे ।

हाथी चिंगाड़ (रामबाँस), सन, मदार केरुआ, रेशम और ताँत से धनुष की डोरी बनती थी, जिसे 'ज्या' कहा जाता था ।

नरकट, बाँस, लोहे के, और लोहा-लकड़ी मिश्रित बाण बनाए जाते थे, जिनके अग्रभाग लोहे, लकड़ी या हड्डी के होते थे । इन्हें दण्डासन, नाराच कहा जाता था ।

तीन प्रकार की तलवारें थीं जिनकी मूठें गेंडा, भैंसा के सींग या हथौड़े की दाँत अथवा बाँस की जड़ या लकड़ी के बनी हुई होती थीं । फरसा, कुठार, गड़ासा, झारा आदि लोहे के हथियार थे । लोहा, सूत, चमड़ा के कवच बनते थे ।

इस प्रकार की सेना और शस्त्रास्त्र साधनों से सम्पन्न राजा निम्न युद्ध (तराई के क्षेत्र में होने वाला युद्ध), स्थल युद्ध, प्रकाशयुद्ध (सामने की लड़ाई) कूट युद्ध (गुरिल्ला, लुक छिपकर होने वाला युद्ध) खन युद्ध (खाई खोदकर) आकाश युद्ध, दिवायुद्ध, रात्रियुद्ध, किया करते थे ।

शत्रु के किले पर अधिकार करने के लिये उपजाप (शत्रु पक्ष को भुलावे में डालना, बहकाना) अपजाप (गुप्तचरों द्वारा शत्रु पक्ष का नाश) वामन (विष आदि औषधियों का प्रयोग) पर्युपासन (चारों ओर घेर लेना) अवमर्द (शत्रु पक्ष को चूर चूर कर देना) आदि उपाय किये जाते थे । अर्थशास्त्र में विजय प्राप्त करने के लिये मुख्यतया उत्साह शक्ति,

प्रभाव शक्ति और मंत्र शक्ति को आधार माना गया है। इन तीनों में मंत्र शक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

अर्थशास्त्र की वैदेशिक नीति—विजिगीषु, अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्र मित्र, अरि मित्र मित्र, पाष्णिग्राह, आक्रन्द, पष्णिग्राह सार, आक्रन्द सार, मध्यम और उदासीन राजाओं के ये बारह भेद अर्थशास्त्र में हैं। आत्मसम्पद् और द्रव्य, प्रकृति सम्पद् सम्पन्न नीति का अन्वय लेने वाला राजा विजिगीषु, विजिगीषु राजा के राज्य के चारों ओर के पड़ोसी राज्यों के राजा अरिप्रकृति, एक राज्य से अलग किन्तु उसके पड़ोसी राज्य से मिला हुआ राज्य पहले राज्य का मित्र, अपने देश से जुड़े हुए देश का राजा शत्रु, उसके आगे का शत्रु, उससे भी आगे का अरिमित्र, फिर उससे आगे का मित्र मित्र और उससे भी आगे का राजा मित्र मित्र कहा गया है। ये विजिगीषु के सामने आगे लड़ते थे और उसके पीछे लड़ने वाले शत्रु राजा पाष्णिग्राह, पाष्णिग्राह के मित्र राजा, पाष्णिग्राहासार, विजिगीषु के पीछे से लड़ने वाला मित्र राजा आक्रन्द और मित्र राजा आक्रन्दासार कहे जाते थे।

राजमण्डल—विजिगीषु राजा, उसका मित्र और मित्र मित्र ये तीनों मिलकर 'राज्य प्रकृति' कहलाते थे। इन तीनों में से प्रत्येक की अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, और सेना के पाँच-पाँच द्रव्य प्रकृतियाँ मिलकर पन्द्रह द्रव्य प्रकृतियाँ मानी जाती थीं। इस प्रकार १५ द्रव्य प्रकृतियाँ और राज्यप्रकृति के तीनों अंग मिलाकर अठारह अंगों का एक 'राजमण्डल' बनता था। इसी क्रम से अरिमण्डल, मध्यम और उदासीन मण्डल आदि भी बनते थे। इस प्रकार बारह राज प्रकृति और साठ द्रव्य प्रकृति सब मिलाकर ७२ प्रकृतियाँ मानी गयी हैं।

वैदेशिक नीति का आधार—संधि, विग्रह, यान, आसन्न, संश्रय, द्वैधी-भाव इन छहों नीतियों के आधार पर वैदेशिक नीति संचालित थी। इसे षाड्गुण्य कहा जाता था। दो राजाओं के परस्पर मेल हो जाने को 'सन्धि', शत्रु का कोई अपकार करना 'विग्रह', संधि, विग्रह आदि कुछ

न कर तटस्थ रहना 'आसन दूसरे पर आक्रमण करना 'यान', विजयी या बलवान राजा को पत्नी पुत्र, कोश आदि देकर--सन्धि करना 'संश्रय' और कभी संधि कभी विग्रह को द्वैधीभाव' कहते हैं।

अर्थशास्त्र में बताया गया है, कि शत्रु की अपेक्षा अपने को कमजोर समझने पर सन्धि कर लेनी चाहिए। अपने आप को शक्तिशाली समझे तो विग्रह करे, अपनी और शत्रु की शक्ति को सम समझे तो तटस्थ रहकर आसन नीति का अवलम्बन करे अपनी शक्ति देखकर, युद्ध के लिए देश, काल आदि उपयुक्त समझकर, यान नीति का प्रयोग करे। दुर्बल पड़ने पर राजा संश्रय का आश्रय ले। किसी कार्य में सहायता की आवश्यकता पड़ने पर द्वैधी भाव का प्रयोग करे।

विजिगीषु को चाहिए कि सम या अधिक शक्ति वाले शत्रु से सन्धि कर ले, अपने से हीन शक्ति शत्रु से विग्रह करे इसी प्रकार, सम, हीन, तथा अधिक शक्ति वाले शत्रु के साथ विजिगीषु यथोचित सन्धि कर ले।

सन्धियों के भेद--शक्तिहीन राजा बलवान राजा द्वारा निर्धारित सेना, भू आदि दण्डस्वरूप भेंट लेकर जब विजयी के यहाँ स्वयं जाता है तो उसे 'आत्माभिष सन्धि' कहते हैं। जिस सन्धि में राजकुमार और सेनापति को अर्पित किया जाय उसे 'पुरुषान्तर सन्धि' कहते हैं। शत्रु के काम को पूरा करने के लिए जब राजा स्वयं आता है या सेना भेजता है तो उस सन्धि को अदृष्टपुरुष सन्धि कहते हैं। ये तीनों प्रकार की सन्धियाँ 'दण्डोपनत सन्धि' कहलाती हैं। विजेता द्वारा शिरपतार अमात्य, सेनापति आदि को मुक्त कराने के लिए धन देकर जो सन्धि की जाती है उसे 'परिक्रम सन्धि' कहते हैं। इस सन्धि में जब किशत द्वारा धन चुकाना तय किया जाय तो उसे 'उपग्रह सन्धि' कहते हैं। जब यह निश्चय होजाय कि अमुक समय में अमुक स्थान पर इतना धन अदा किया जाय तो उसे 'अत्यय सन्धि' कहते हैं। सुविधानुसार शर्त का धन देने के निश्चय को 'सुवर्ण सन्धि' कहते हैं। जिस सन्धि में तत्काल धन राशि अदा करनी

पड़ती है उसे 'कपाल सन्धि' कहते हैं। इस प्रकार ये सन्धियाँ मिलकर 'कोषोपनत सन्धि' कहलाती है।

प्रकृतियों की रक्षा के लिए राज्य का कुछ भाग देकर जो संधि की जाती है, उसे 'आदिष्ट सन्धि' कहते हैं। राजधानी और दुर्गों को छोड़कर सारहीन भूमि देकर जो सन्धि की जाती है उसे 'उच्छिन्न सन्धि' कहते हैं। उपज देकर जिस सन्धि में भूमि को मुक्त किया जाता है उसे 'अवक्रय सन्धि' कहते हैं। जिस सन्धि में उपज के अतिरिक्त और कुछ देना पड़े उसे 'परिदूषण सन्धि' कहते हैं। ये चारों सन्धियाँ मिलकर 'देशोपनत सन्धि' कहलाती हैं।

सन्धियों के अतिरिक्त शत्रु को विनष्ट करने, अपने अधीन करने या दबाने के लिए अर्थशास्त्र में विष, औषधियों, यंत्र, मंत्र, तंत्र के प्रयोग भी बताये गए हैं।

इन उपायों से राजा जिस देश को जीते उस देश में शान्ति और सुव्यवस्था लायम करने के लिए वह उन बुराइयों को निकालने की चेष्टा करे जिसके कारण उस देश की प्रजा पीड़ित रहती थी। अनुग्रह और परिहार द्वारा दान और सत्कार द्वारा वह प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट बनाये रखने की चेष्टा करे। कृत्य पक्ष (लोभी, क्रोधी और भीतवर्ग) को तथा शक्ति धन आदि देकर प्रसन्न बनाये रखे। प्रजावर्ग के समान ही राजा अपना वेष, अपनी भाषा अपना शील और आचरण बनाये। यह कौटल्य की नीति है।

राजदूतों के कार्य—विदेशों में अपने राजदूतावास स्थापित किये जायँ वहाँ जो राजदूत नियुक्त किये जायँ वे उस देश के राजा वहाँ की प्रजा तथा देश भर की भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थितियों अध्ययन करते रहें। अपने गुप्तचरों द्वारा उस देश की अन्तरंग बातों का की जानकारी प्राप्त करें। राजदूत व्यवहार, कुशल, रानीतिज्ञ, स्वस्थ, सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व और सर्वगुण सम्पन्न हों। दोनों देशों के बीच हुई सन्धि को मजबूत बनाये रखें। अक्सर आने पर पराक्रम भी दिखायें।

राजस्व—राज-कर वस्तु के रूप में ग्रहण किया जाता था। प्रति-दिन होनेवाली सरकारी आमदनी को 'वर्तमान', पिछले वर्ष की बकाया आमदनी की 'कमूली' जय दूसरे साल होती थी तो उसे 'पर्युपित' भूली हुई, गड़बड़ छँ अड़ी हुई या शत्रु देश से प्राप्त आमदनी भी पर्युपित कहलाती थी और भार्य (विशेष आवश्यकता में वसूल किया जाने वाला धन) पारिहारिक (चापायों खेती, घास आदि का नुकसान किये जाने पर उनके मालिकों से वसूल किया गया जुर्माना), औपायनिक (भेंट-स्वरूप प्राप्त धन) और लुवारिस धन को 'अन्यजात' आय कहा जाता था। सेना, चिकित्सा, दुर्ग आदि के लिए स्वीकृत व्यय में से बचे हुए धन को 'व्यय-प्रत्याय' कहा जाता था। यह भी एक प्रकार की आमदनी मानी जाती थी।

आमदनी के स्रोत—दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, तथा वणिक्पथ ये सात आमदनी के मुख्य स्रोत माने जाते थे।

दुर्ग—इसके अन्तर्गत २१ विभाग थे जिनसे राज्य की आमदनी होती थी।

१—शुल्क—वाह्य, आभ्यन्तर और आतिथ्य भेद से शुल्क तीन प्रकार का था। तीनों प्रकार का शुल्क निष्काम्य और प्रवेश्य दो भागों में विभक्त था। शुल्क का तात्पर्य आजकल की सी चुंगी का ही था। ग़ाहर जानेवाले माल पर जो चुंगी लगती थी उसे निष्काम्य और अपने देश के भीतर आने वाले माल पर लगनेवाली चुंगी को प्रवेश्य कहा जाता था। यह चुंगी पदार्थ के रूप में ली जाती थी कभी-कभी किसी-किसी माल पर नगदी द्रव्य के रूप में भी ली जाती थी। उस समय की सरकारी मुद्रा का नाम निष्क पड़ा था। जो जुर्माना और चुंगी के रूप में वसूल किया जाता था। उस समय की प्रजा और राजा पण से ही अपना समस्त व्यवहार चलाती थी। पण से छोटा सिक्का अर्द्ध पण उससे छोटा पण का त्रुथांश उससे भी छोटा पण का अष्टमांश पण था। यह कौटल्य काल का प्रामाणिक सिक्का था जो राजा द्वारा चलाया गया।

था। यह एक प्रकार की रूप्य मुद्रा थी। जिसका वजन १६ माशे था जिसमें ११ माशे चांदी, चार माशे ताँबा, १ माशा लोहा, सीसा, रांगा और सुरमा मिला हुआ था।

सामान्यतः वस्तुओं के मूल्य का ५ प्रतिशत शुल्क लिया जाता था। रेशमी, ऊनी, वस्त्रों, धातु, चन्दन तथा कुछ मसालों पर १५ प्रतिशत, चौपाये, दो पाये जानवरों, सूत, कपास, ओषधि, सुगन्धित पदार्थ, अनाज, मिठाई आदि पर बीस प्रतिशत शुल्क लिया जाता था। चुंगी लेने की शरह का निर्धारण देश के हित का ध्यान रखकर किया जाता था। विवाह शादी से सम्बन्धित, भेंट में मिली हुई वस्तुयें, यज्ञसामग्री, सोलहों संस्कारों के निमित्त सामग्री पर चुंगी नहीं लगती थी। किसी वस्तु के व्यापार को बढ़ाने के लिए भी उस पर से चुंगी उठा ली जाती थी।

२—दण्ड—अपराधियों को न्यायालय द्वारा जो जुर्माना किया जाता था। उसकी आमदनी को दण्ड कहा जाता था।

३—यौतव—चीजें तौलनेवाले बटखरों से होनेवाली आमदनी। उस समय तराजू और बटखरे राज्य की ओर से बिका करते थे। हर चौथे महीने यौतकाध्यक्ष उनका निरीक्षण करता था। जो व्यापारी धिक्के हुए बटखरों से तौलते थे उन्हें दण्ड दिया जाता था।

४—नागरिक—नगर के मुख्य अधिकारी, नागरिकों की बेजा हरकतों पर उन्हें जो दण्ड देते थे उसकी आमदनी।

५—लक्षणाध्यक्ष—लक्षण टकसाल को कहा जाता था। उस समय जनता अपने घर से धातु ले जाकर टकसाल में सिक्के ढलवा लेती थी, ढलाई के लिए उसे शुल्क देना पड़ता था। रूपदर्शक सिक्कों की पारिख किया करता था। सौ पण पर आठ पण राज्य भाग जनता से लिया जाता था, इसे रूपिका कहा जाता था। सौ पण पर ५ पण राज्य भाग व्याजी कहलाता था और सौ पण पर अष्टमांश भाग 'पारिक्षिक' कहा जाता था।

६—मुद्रा—राज्य के अन्दर या बाहर आने जाने वाले यात्रियों

को राज्य से मुद्रा (पासपोर्ट) लेनी पड़ती थी। इसके लिए एक 'याषक' टैक्स लिया जाता था। जो बिना पासपोर्ट जाते थे, या जाली बना लेते थे, उन पर जुर्माना किया जाता था।

७--सुरा--शराब की दुकानें ठेके पर चलायी जाती थीं। शराब बनाने और बेचने पर शुल्क लगाया जाता था। सरकार द्वारा प्रमाणित व्यक्तियों से अतिरिक्त जो शराब बनाता या बेचता उसे ६०० पण दंड दिया जाता था।

८--सूना--कसाई खाने में जो मांस विकता था, उसकी आमदनी।

९--सूत्र--सेना और सरकार के लिए जो रस्सियाँ, कवच और कपड़े सूत्राध्यक्ष बनवाता था, उन्हें जनता में भी बेचा जाता था।

१०, ११, १२--सार और कुप्य--तेल, घी और क्षार पदार्थों की आमदनी।

१३--सौर्वाणिक--सुनारों की बेईमानी रोकने के लिए एक अधिकारी रहता था जो बेईमान सुनारों को दण्डित करता था।

१४--पण्य संस्था--सरकारी माल की बिक्री जो बाजार में होती थी, उसकी आमदनी।

१५--वेश्या--वेश्यालयों से जो कर वसूल किया जाता था तथा वेश्याओं के लाइसेन्स से होने वाली आमदनी।

१६--द्युत--जुआरियों और जुयों के अड्डों से होने वाली आमदनी।

१७--वास्तुक--घर, खेत, बाग़, तालाब, बाँध से होने वाली आमदनी।

१८--काश्चित्प--बढ़ई, लुहार, पुस्त्री आदि से होने वाली आमदनी।

१९--देवालय--ऐसे मन्दिर जिनकी आमदनी श्रोत्रियों को नहीं मिलती थी, धूर्तों, पाखंडियों के अधिकार में रहती थी उसे जब्त कर लिया जाता था।

२०--द्वार--किसी वस्तु पर निर्धारित चुंगी का पंचमांश 'द्वार' कहलाता था। नगर के प्रधान द्वार पर प्रवेश करने पर द्वाराध्यक्ष इसे वसूल करता था।

२१--वाहिरिकादेय--नट, नर्तक, कुशीलव धूर्त आदि से लिया जाने वाला टैक्स।

उपर्युक्त २१ प्रकार के कर दुर्ग की आमदनी कहे जाते थे।

२--राष्ट्र--सीता (सरकारी खेती) भाग (उपज का छठा भाग) वलि (धार्मिक कार्यों के लिए विशेषकर), कर (फल तथा वृक्ष संबंधी विशेष कर), वणिक् (व्यापारियों से होनेवाली आमदनी) नदीपाल (नदियों द्वारा होनेवाली आमदनी) तर (घाट की उतराई) नौ (नावों का कर) पट्टन (कसबों से होनेवाली आमदनी), विवीत (सरकारी चरागाहों का उपयोग करने वालों से प्राप्त कर) वर्तनी (घिक्री का माल ढोने वालों से प्राप्त कर), रज्जू (पटवारियों द्वारा प्राप्त होने वाली आमदनी), चोर रज्जू (चोरों को पकड़ने के लिए गांव वालों से प्राप्त धन) यह सब आमदनी राष्ट्र कहलाती थी।

३--खनि--मूल्य (खदानों के ठेके की आमदनी), विभाग (तैल का टैक्स जो विश से आए हुए नमक आदि पर उसके मूल्य का छठा हिस्सा लिया जाता था), व्याजी (व्यापारी लोग जितना माल तैल लेते थे उसका बीसवां भाग, जितना नापते थे उसका सोलहवां भाग और जितना गिनते थे उसका ग्यारहवां भाग टैक्स लिया जाता था) अत्यय (राजा की ओर से जिन वस्तुओं को बेचने का लाइसेन्स वन भाग को दिया जाता था उनकी आमदनी), धरिध (धातुओं की शुद्धता अशुद्धता बताने का कर), शुल्क (खदानों से उत्पन्न वस्तुओं की चुंगी की आमदनी), वेधरण (अपने देश में पैदा हुई वस्तुयें एक ही स्थान पर और विदेशी वस्तुयें कई जगहों पर बेचने से हुई आमदनी), दण्ड (खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में जो अपराध किये जाते थे उन पर जो जुर्माना होता था

उसकी आमदनी), रूप (८ प्रतिशत टैक्स जो आकरज वस्तुओं पर लगता था), रूपिक (टकराल में मुद्राओं के परख में आठ प्रतिशत लिया जाने वाला कर), यह आमदनी खनि कही जाती थी ।

४—~~सेतु~~—फूल, फल, सुपारी आदि के बीजोंकी, अदरक, हल्दी आदि के खेतों की आमदनी सेतु कहलाती थी ।

५—वन—जंगल विभाग की सब प्रकार की आमदनी ।

६—व्रज—गाय, भैंस, भेड़ा, बकरी, गधे, घोड़े, सुअर, सांड, बैल आदि पशुओं से होने वाली आमदनी ।

७—वणिक्पथ—जलमार्ग और स्थलमार्ग में होने वाली व्यापारों की सब प्रकार की आमदनी ।

ये सात अर्थशास्त्र के अनुसार आय के मुख्य स्रोत थे । जो राज्य की सामान्य दशा में आमदनी के जरिये माने जाते थे । किन्तु राज्य पर विपत्ति या संकट उपस्थित हो जाने पर एक आपत्कालीन कोश स्थापित किया जाता था जिसके द्वारा कोश का अधिक संग्रह नये-नये कर लगाकर किये जाते थे । कर लगाते समय यह ध्यान रखा जाता था, कि प्रजा पीड़ित, संतप्त और उद्विग्न न होने पड़े ।

अक्षपटल—सरकारी अय-व्यय का हिसाब-किताब अक्षपटल (ए० जी० आफिस) में रहता था । आय-व्यय का लेखा-रीखा गाणनिक्य (एकाउण्टेंट), किया करते थे । आय-व्यय के रजिस्टर क्रमानुसार रखे जाते थे । वे विभिन्न ९ विषयों में विभाजित रहते थे । अक्षपटल में जाकर समाहृत लेखकों, गाणनिक्यों और उनके अध्यक्षों से दैनिक, पंचाङ्गिक, पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक और वार्षिक हिसाब की जाँच करता था । पूरी जाँच हो जाने के बाद आमदनी खर्च का चिट्ठा तैयार किया जाता था ।

राजकर्मचारियों की नियुक्ति और उनके वेतन—कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार राजकर्मचारियों की नियुक्तियाँ योग्यता, गुण, शील के आधार

पर की जाती थीं। अमात्यों, आदि की नियुक्तियाँ भी जाति मतभेद से परे होती थीं। केवल गुण और कर्म की प्रधानता रहती थी। कर्मचारी लालची, रिश्वतखोर और कर्त्तव्य च्युत न बन जायें इसलिये उन्हें भरपूर वेतन दिया जाता था। रिश्वत लेने वाले कर्मचारी देशद्रोही समझे जाते थे। उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। प्रत्येक कर्मचारी की ईमानदारी, कुशलता, कार्यपद्धति और योग्यता का निरीक्षण हर समय अधिकारी गुप्तचर, मंत्री और राजा किया करते थे। राजकर्मचारियों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखा जाता था किन्तु उन पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जाता था।

राजकर्मचारियों के वार्षिक वेतन का विवरण अर्थ शास्त्र में इस प्रकार लिखा है :—

ऋत्विक्, पुरोहित, मंत्री, सेनापति, युवराज, राजमाता और राज महिषी—४८ हजार पण।

दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता और सन्निधाता—२४ हजार पण।

राजकुमार (युवराज नहीं) उनकी मातायें, उनकी पत्नियाँ, धात्रियाँ, नयक, पौरव्यापहारिक, कार्मान्तिक, मंत्री पक्षिपद् के सदस्य, राष्ट्रपाल (पुलीस जनरल) अन्तपाल—१२ हजार पण।

श्रेणीमुख्य, हस्तिमुख्य, अश्वमुख्य, रथमुख्य, प्रदेष्टा—८ हजार पण। पत्यव्यक्ष, अश्वसेनाध्यक्ष, हस्तिसेनाध्यक्ष, रथ सेनाध्यक्ष और आटविक—४ हजार पण।

रथिक, सैनिक वैद्य, अश्वशिक्षक, पशुपक्षियों का पालक—२ हजार पण।

कार्तान्तिक, नैमित्तिक, मौहूर्तिक, पौराणिक, सूत, मागध, पुरोहित-भृत्य—१ हजार पण।

शिल्पवान, पादात, संह्यायक, लेखक—५०० पण ।

कुशीलिक, नट, नर्तक, गायक—२५० पण ।

पशु परिचारक, भृत्य, पालक, गोपालक—६० पण ।

युक्तारोहक (बिगड़े हुए घोड़े पर सवारी करने वाले), माणवक (वेदाध्यायी), मौलखनक (पत्थर पर नक्काशी करने वाले) सर्वोपस्थायिन आचार्य (गायनाचार्य)—योग्यतानुसार ५०० से १००० पण तक ।

राजसूय यज्ञों में जो काम करते थे उन्हें उस समय उनके साधारण वेतन से तिगुना दिया जाता था ।

विभिन्न गुप्तचर—योग्यतानुसार २५० से १ हजार पण तक ।
कौटलीय शासनपद्धति का मुख्य उद्देश्य था :—

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः, प्रजानान्तु प्रियं हितम् ॥

—अर्थशास्त्र १।१९

नन्द राज्य, मौर्यराज्य और चाणक्य

नन्दवंश—मत्स्यपुराण (२७०।१८) और वायुपुराण (९९।३२६) से ज्ञात होता है, कि महानन्दी की शूद्रा पत्नी से महापद्म नामका एक पुत्र पैदा हुआ जो 'सर्वशत्रुान्तवृत्त महापद्म' भी कहा जाता था। महानन्दी शैब्यनाग वंश का अन्तिम मगध सम्राट था, इसी से नन्द वंश की परम्परा का उदय होता है। इसकी शूद्रा पत्नी से पैदा हुआ पुत्र महापद्म महानन्द, नन्द, धन नन्द, महापद्मपति और उग्रसेननन्द, आदि नामों से पुराणों, बौद्ध-जैन ग्रन्थों तथा परवर्ती साहित्य और इतिहास में विख्यात है। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में जिस कालाणक का जिक्र है उसी को मंजुश्री मूलकल्प (श्लोक ४ १७, ४ २२) में महानन्दी अथवा विशोक कहा गया है और उसके बाद शूरसेन और नन्द दो नाम उत्तराधिकारी के रूप में आये हैं। मत्स्यपुराण (२७३।५०), ब्रह्माण्ड पुराण (३। ७४।२४२), विष्णु पुराण (४।२४।४१) से ज्ञात होता है, कि महानन्द, महापद्म और नन्द एक ही व्यक्ति के नाम हैं। स्कन्दपुराण (१२।१।९) की गवाही से भी जाना जाता है, कि महापद्म या महानन्दी अत्यन्त धनवान होने के कारण महापद्मपति कहलाता था। अवन्तिसुन्दरी कथासार (४।१७।२०) के अनुसार उज्जैन में महानन्दी राज्य करता था, उसका पुत्र महापद्म हुआ। इससे यह भी जाना जाता है कि महानन्दी का राज्य मगध से उज्जैन तक फैला हुआ था। मुद्राराक्षस नाटक (३।२७) और कथा सरित्सागर में नन्दों को ९९ करोड़ का अधीश्वर लिखा गया है। इससे नन्द के धनवान होने का भी प्रमाण मिल जाता है। मुद्राराक्षस नाटक की टीका के उल्लेख में दुर्णिराज ने जो यह अनुमान किया है कि नवनवतिकोटीश्वर होने के कारण ही नन्द का नाम सर्वार्थभिद्धि पड़ा—युक्ति संगत जान पड़ती है। पुराणों में महापद्म को एक च्छत्र अतिबल, अनुल्लङ्घित-शासन सम्राट्

माना गया है। 'परक' (कल्पस्थान चक्रपाणि टीका १२।१७) में मागध और कालिंग दो प्रकार के प्रचलित तोलने के मान (तील) का उल्लेख है। काशिका वृत्ति (२।४।२१) की 'नन्दोपकमाणि माननि' व्याख्यान में वामनीय लिङ्गनुशासन की एककारिका में लिखा है—'नन्देन किल प्रथमं मानानि कृतानि'। इससे ज्ञात होता है, कि सम्राट् महापद्मनन्द तेजस्वी, एश्वर्यशाली पति—

मंजुश्री मूलकल्प में विशोक के बाद उग्रसेन और नन्द का जो उल्लेख है। हमारे अनुमान से वह उग्रसेन हो सकता है। क्योंकि महानन्दी की शूद्रा स्त्री से महापद्म या उग्रसेन का उत्पन्न होना सिद्ध है। धर्मशास्त्र में क्षत्रिय के वीर्य से शूद्र के गर्भ से उत्पन्न बालक को उग्र कहा गया है। विश्व प्रकाशकोश (१०७।१२९) में 'उग्र' शूद्रा सुते क्षत्रात्' लिखा है। कौटलीय अर्थशास्त्र (३।७।२४) में भी क्षत्रियस्य शूद्रायायुग्रः लिखा हुआ है। पुराणों में स्पष्ट शूद्रापुत्र स्वीकार किया गया है।

इस निराकरण से यह सिद्ध हो गया कि महानन्दी का पुत्र महापद्म शूद्रा से उत्पन्न हुआ था। संस्कृत भाषा का अधूरा ज्ञान रखने के कारण पाश्चात्य इतिहासकारों और उनके अनुगामी भारतीय इतिहासकारों ने महापद्म के स्थान पर चन्द्रगुप्त को शूद्रा पुत्र कहने की भूल की है। इस संबंध में विशेष विवेचन चन्द्रगुप्त के प्रसंग में किया जायगा।

नवनन्द— भागवत और विष्णुपुराण में नव (९) नन्दों का उल्लेख है। महावंश (५।१५) में नवनन्द अथवा नवभ्रातर का उल्लेख है। मत्स्य, वायु, और ब्रह्माण्ड पुराणों में महापद्म और उसके आठ पुत्रों का उल्लेख है। भारतीय ज्योतिष (फलित) में 'नन्द' शब्द का तात्पर्य नौ (९) की गिनती से है। ब्रह्मगुप्त (छठवीं, सातवीं शती के मध्य उत्पन्न) अपने 'खंड-~~खण्डिका~~ (अधिकार १ श्लोक ४) में 'षडजनन्दैः' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ ९७६ होता है। पाश्चात्य इतिहासकारों और अनुगामी भारतीय इतिहासकारों ने नव शब्द का अर्थ नया माना है।

पुराणों और बौद्धग्रन्थों में महापद्म के आठ पुत्र लिखे गए हैं। महावंश

में आठों पुत्रों के नाम भी गिनाए गये हैं किन्तु पुराण में नहीं । जैन-अनुश्रुतियों (विविधतीर्थ कल्प पृ० ६९) में नवनन्द का भन्त्री शकटाल (शकटार) था । मुद्राराक्षसनाटक और उसके टीकाकार ऋण्णिराज के मतानुसार 'राक्षस' और 'वक्रनास' 'सर्वार्थसिद्धि' नन्द के कुलामात्य थे ।

मत्स्यपुराण (२७२।२२) के अनुसार कौटल्य को नन्दवंश का समूल नाश करने में बारह वर्ष लगे थे । पुराणों, नीतिग्रन्थों, कामसूत्र, नाटकों आदि शतशः संस्कृत ग्रन्थों में एवं बौद्ध जैन कथा ग्रन्थों से यह सिद्ध हुआ है, कि महापद्म नन्द का समूल नाशक चाणक्य (कौटल्य) था । कौटलीय अर्थशास्त्र (१५।१।८०) में कौटल्य ने स्वयं इसे स्वीकार किया है ।

मौर्यराज्य—बौद्ध ग्रन्थों, और उनके शासन-लेखों से ज्ञात होता है, कि शैषुनाग वंशी महानन्दी की शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र महापद्म के धन नन्द से मगध का सिंहासन छीन लेने वाला चन्द्रगुप्त मौरियों के नगर का राजकुमार था । वह नगर पिप्पली कानन था, और पिप्पली कानन में मौर्यराजा भी बुद्ध के शरीर-भस्म लेने वालों में से एक थे । यूनानी इतिहासकारों तथा उनके आधार पर लिखने वाले अन्य इतिहासकारों एवं संस्कृत, ग्रन्थों के परवर्ती टीकाकारों और जैन कथाकारों ने चन्द्रगुप्त को मुरा नाम की शूद्रा या नाइन से उत्पन्न मौर्यवंश का स्थापक प्रथम राजा माना है । यूनानी इतिहासकारों ने 'सेन्द्राकोट्स' लिखा है जिसे कुछ लोग चन्द्रगुप्त मानते हैं किन्तु यह एक विवाद पूर्ण नाम है, आश्चर्य तो इस बात का है कि यूनानी इतिहासकारों ने चाणक्य, कौटल्य का कहीं भी जिक्र नहीं किया है । चन्द्रगुप्त को विशाखदत्त ने अपने मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य के मुख से 'वृषल' कहलाया है । वृषल ब्राह्मण या पतित को कहा जाता है, संभवतः इससे भी यूनानी इतिहासकारों द्वारा महापद्म के स्थान पर चन्द्रगुप्त को शूद्र घोषित करना यह भ्रम उत्तरोत्तर पुष्ट होता गया । मनुस्मृति में लिखा है—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः ।

वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात् ।

तात्पर्य यह कि ब्राह्मणों द्वारा आचार व्यवहार का उपदेश न प्राप्त करने से क्षत्रिय लोग वृषल हो गए ।

महाभारत (११.१५० वही ६।३।६१) में (वृषल' और वृषल-कुल का उल्लेख है । वृषल से तात्पर्य चन्द्रगुप्त और वृषल कुल से तात्पर्य मौर्वीवंश हो सकता है । कौटिलीय अर्थशास्त्र (३) १५।४७) में वृषली-भर्ता (शूद्रापाते) उस व्यक्ति के लिए कहा गया है जो शूद्रा को अपनी स्त्री बनाकर घर पर रखता हो ।

बौद्धकाल में वृषल, और देवानांप्रियः ये दो शब्द दो अर्थ के वाचक थे । वृषल का अर्थ पापी और धर्महीन तथा देवानां प्रियः का अर्थ देवताओं का प्रिय और मूर्ख लगाया जाता रहा है । विश्वप्रकाश (पृ० १५३) कोश में वृषल शब्द के पर्यायी शूद्र, चन्द्रगुप्त और अश्व लिखे हैं । निरुक्त (३।१६) में ब्राह्मणवद्, वृषलवद् ब्राह्मण इव वृषल इवा वृषलो वृष-शीलो भवति, वृषशीलोवा, यह व्याख्यान वृषल शब्द का किया गया है । जिसका अर्थ होता है, वृष (धर्म) शील और वृष (धर्म अशील) मनुस्मृति (८।१६) में 'वृषो हि भगवान् धर्मः' लिखा गया है । इन व्याख्याओं के आधार पर वृषल शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के अनुसार वृष धर्मं लाति आदत्ते इति वृषल और मनु ने भी मनुस्मृति में वृषल की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्यः कुरुते ह्यलम् ।

वृषलं तं विदुर्देवास्तस्मिन् धर्मं न लोपयेत् ॥ (मनु० ८।१६)

वृषलशब्द की इन व्याख्याओं और व्युत्पत्तियों से स्पष्ट हो जाता है, कि आधुनिक लेखकों ने चन्द्रगुप्त मौर्य की उत्पत्ति मुरा नाम की नाइन या वृषली से होने की जो कल्पना की है वह निराधार है । थोड़ी देर के लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि उसकी माँ का नाम मुरा था तो व्याकरण के अनुसार मुरा की सुन्तान 'मौरेय' होगी मौर्य नहीं ।

कामन्दक नीति सार की उपाध्याय निरपेक्षा टीका (अलवर राजकीय

पुस्तकालय केटलाग पृ० ११०) में चन्द्रगुप्ताय मौर्यकुल प्रसूताय लिखा है। इससे भी स्पष्ट होता है, कि चन्द्रगुप्त किसी मौर्य कुल में उत्पन्न हुआ था वह उसका स्थापक या प्रथम व्यक्ति न था । अर्थात् पिप्पलीकानन का मौर्यकुल ही उसका मूल स्रोत था । मार्कण्डेय पुराण (देवी चरित खण्ड) में भी 'कालकादौर्हदा मौर्याः कालकेयास्तथापरे' लिखा होने से यह प्रमाणित होता है, कि मौर्य राज वंशसे बहुत प्राचीन था और चन्द्रगुप्त उस वंश का एक प्रतापी सम्राट् था । मौर्य का मूल निवास पिप्पलीकानन आज उत्तर प्रदेश और नेपाल की सीमा पर बस्ती जिले में 'पिपर-हिया' नाम से स्थित है। इस स्थान की खोज और खुदाई मि० पीपी ने की थी। विहार प्रदेश में प्राप्त कुछ सिक्कों में "मयूर" चिन्ह अंकित है। इन्हें मौर्य कालीन बताया जाता है। इनकी संगति अर्थ कथा की उस कहानी से बैठती है, जिसमें कहा गया है, कि शायद वंशी क्षत्रियों ने बुद्ध के जीवन काल में ही आपस में झगड़ा किया था, जिससे कुछ लोग कपिल वस्तु को छोड़ कर पिप्पली कानन में अपना नगर बसाया उस नगर में सुन्दर कौच और मयूर पक्षियों की भरमार थी। पिप्पली कानन के वनों में सुन्दर सुन्दर मयूरों और कौच पक्षियों के चित्रांकित किए गए थे इसीलिए शायद लोग (कपिल वस्तु के) उन्हें 'भोरिय' कहने लगे थे।

मौर्यवंशी क्षत्रिय बड़े पराक्रमी और उत्साही थे उन्होंने धीरे धीरे शक्ति संचित कर राज्य विस्तार करना शुरु किया। २६४ वर्ष विक्रम-संवत् पूर्व उन्होंने पिप्पली कानन से बाहर पाटलीपुत्र उज्जैन, महेश्वर, धारचिन्ताड़ और आबू तक अपना प्रभुत्व विस्तृत किया। टाडने अपने राज स्थान का इतिहास में मौर्यों को परमारों में माना है। मौर्यवंश परमार वंश की एक शाखा थी ऐसी उलकी मान्यता है। कुछ भी हो यह निश्चित है, कि मौर्यवंश बहुत प्राचीन था और उसकी अपनी परम्परा और एक पृथक् अस्तित्व भी रहा है। मौर्यवंशी क्षत्रिय राजा थे, इसी कुल में चन्द्र गुप्त उत्पन्न हुआ था।

मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त का प्राकृत नाम 'चन्द्र सिरि' और चन्द्र

उत्त है। अवन्तिसुन्दरी कथासार (चतुर्थपरिच्छेद) में महापद्म के पुत्रों का मरण और चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की कथा लिखी हुई है।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, कौटल्य ही चाणक्य थे और उन्होंने नन्दवंश कानाश का चन्द्रगुप्त का मगध का सम्राट् बनाया था। इसकी समीक्षा पहले की जा चुकी है। कामन्दक नीतिसार के प्रारम्भिक श्लोकों से जान पड़ता है, कि चाणक्य एक सुप्रसिद्ध एवं कुलीन वंश में उत्पन्न महामेधावी वेद, वेदांग निष्णात और अर्थशास्त्र का अगाध विद्वान था। कौटलीय अर्थशास्त्र की रचना क्रम, उसके अल्पाक्षर, असन्दिग्ध, सारगर्भितसुत्रों तथा उनके भाष्य का रचना-शैली देखकर चाणक्य को सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ मानना पड़ता है।

अर्थशास्त्र को पढ़ने से यह विश्वास हो जाता है कि कौटल्यको राजनीति पर लिखने और शासन के माध्यम से उस राजनीति के प्रयोग का काफी अवसर मिला होगा। क्योंकि अर्थशास्त्र (२।११।६५) में उसने यह स्वयं स्वीकार किया है, कि सम्पूर्ण शास्त्रों को अच्छी तरह जानकर और उनके प्रयोगोंकोभलीभांति समझकर इसकेबाद नरेन्द्र (चन्द्रगुप्त) के लिए यह शासन विधि लिखी गई है।

इस कथन से यह मालूम होता है, कि कौटलीय अर्थशास्त्र एक प्रकार का शासन विधान है। जिसे कौटल्य ने अपने अशेषशास्त्र-ज्ञान के बल पर और दीर्घकालिक अनुमानों के आधार पर सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासन को सर्वांगीण और अजेय बनाने के लिए लिखा है। यह भी निश्चित होता है, कि कौटल्य ने जिन राजनीतिक-प्रयोगों के बल पर नन्दवंश का विनाश किया था और चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट् बनाया था, उन्हीं सब प्रयोगों को उसने अपने जीवन के उद्देश्य की सफलता प्राप्त होने तथा जीवन के शान्त क्षणों में सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए 'कौटलीय अर्थशास्त्र' के रूप में निबद्ध किया है। चन्द्रगुप्त को सम्राट् बना देने के बाद ही कौटलीय ने अर्थशास्त्र की रचना की थी इस कथन की पुष्टि अर्थशास्त्र के अनेक

वाक्यों से होती है—ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रम्,

येन शस्त्रं च शास्त्रं च, नन्दराजगताच भूः ।

अमर्षेणोधृतान्याशु, तेन शास्त्रमिदं ~~कृतम्~~ ।

मगध सम्राट महापद्मनन्द द्वारा चाणक्य का तिरस्कार करने के कारण चाणक्य ने उसे विनष्टकरके चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट बनाया और फिर उसके शासन को सुदृढ़ और सफल बनाने के लिए कौटलीय अर्थ-शास्त्र की रचना की है ।

कामन्दकीय नीतिसार के प्रारंभिक श्लोकों से यह जाना जाता है, विष्णुगुप्त चाणक्य प्रसिद्ध और कुलीन वंश में उत्पन्न तेजस्वी, अशेष शास्त्र-निष्णात ब्राह्मण था । मुद्राराक्षस नाटक से मालूम पड़ता है, कि कौटल्य स्वयं सरल, सौम्य, त्यागी, तपस्वी और निःस्वार्थ व्यक्ति था । मंजुश्रीमूलकल्प (४५४-४५६ श्लोक) में लिखा है, कि चाणक्य दीर्घजीवी था, वह तीन राज्यपर्यन्त जीवित रहा । परिशिष्टपर्व आदि जैन ग्रन्थों के अनुसार चाणक्य जैनी था । वह दीर्घायु भोगने के बाद विन्दुसार के शासनकाल में मरा और सुबन्धु ने उसे उसी की कुटिया में जलादिया । इसी प्रकार जैन ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त भी जैन धर्मावलम्बी था । आचार्य भद्रबाहु के साथ वह तीर्थ यात्रा के लिए गया । उस समय देश में बहुत बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था । चन्द्रगुप्त ने तपस्या करते हुए श्रवण बेलगोल (मैसूर राज्य) में देह त्याग किया । किन्तु मंजुश्री मूल कल्प और *Ancient India, Voll, by T.L. Shah Barada* में लिखा हुआ है, कि चन्द्रगुप्त का अन्त विस्फोट से हुआ उसने आधीरात में विन्दुसार को अपना उत्तराधिकारी बनाया । इन दोनों मतों में कौन सही है, इसका निर्णय अभी तक इतिहासकारों ने नहीं किया है । ~~इससे~~ अपना अनुमान है, कि मंजुश्री कल्प का मत अधिक युक्ति-संगत है, क्योंकि जैन अनु-श्रुतियों में ऐसी अनेक घटनाएं और कथाएँ हैं, जो इति-हासिक तथ्य बहुत कम रखती हैं उनमें प्रायः सभी की जैन सिद्ध करने

का प्रयत्न है। काव्यालंकार की वृत्ति (सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्र प्रकाशो युवा, जातो भूपतिराध्यः कृतधियां दिष्टया कृतार्थश्चयः) की टोका में भट्टवामन ने चन्द्रगुप्त के पुत्र चन्द्रप्रकाश का उल्लेख किया है और यह कहता है कि उसने श्लोककार सुबन्धुको अपना मंत्री बनाया। हमारा अनुमान है, कि चन्द्रगुप्त गुप्त वंश का कोई राजा था। हेमचन्द्र के परिशिष्ट वर्ष से बात होता है कि विन्दुसार का मंत्री सुबन्धु था। दंडी की अवन्ति सुन्दरी कथा (श्लोक ६) से जान पड़ता है कि विन्दुसार ने सुबन्धु को वेंसे बनाया था। मंजुश्री कल्प (श्लोक ४४२) में दुष्टमंत्री का संकेत किया गया है।

बौद्ध ग्रन्थ चाणक्य को तक्षशिला निवासी और जैन ग्रन्थ बेलगोल (मंसूर राज्य) का निवासी बताते हैं। यह एक ऐसा विषय है जिस पर अधिकारपूर्वक निर्णय नहीं किया जा सकता है। बौद्ध ग्रन्थों का कथन कुछ तथ्य पूर्ण कहा जा सकता है, लेकिन हमारा अनुमान है, कि चाणक्य तक्षशिला का निवासी नहीं अन्तेवासी था। और उसकी जन्मभूमि नेपाल की तराई लिच्छवियों, शाक्यों या मौर्यों के किसी प्रदेश में रही होगी। वैद्यक निघंटु में जिस कन्द का विष्णुगुप्त, चाणक्य और कोटल्य नाम दिया हुआ है, वह इसी प्रदेश में पैदा होती है। इस कन्द का नाम या तो चाणक्य द्वारा उपयोग करने से चाणक्य आदि पड़ा या इसका नाम पहले केवल चाणक्य ही रहा होगा और उसके आकार, गुण की समता वालक विष्णुगुप्त के आकार, गुणों से होने के कारण विष्णुगुप्त को चाणक्य कहा जाने लगा हो और आगे चलकर चाणक्य के सभी अभिधान उस कन्द लिए प्रयुक्त होने लग गए हों।

कोटलीय अर्थशास्त्र में यद्यपि व्यापक और सर्वजनीन दृष्टिकोण रखकर शास्त्र-सम्मत व्यवहारनीति, आचारनीतिका प्रतिपादन किया गया है, तथा अधिकतर उन्हीं आचारों और व्यवहारों का प्रमुख वर्णन है जो मगध

फिर उसके पड़ोसी प्रदेशों में प्रचलित थे और कौटल्य ने सर्वत्र अन्त में मह व्यवस्था दी है। कि जैसा देश हो उसी के अनुसार व्यवहार किया जाय। कौटल्य के पूर्वज कुटल कहलाते थे, इसलिए कि वे साल भर के लिए अनाज कूट (मिट्टी का वर्तन) में रख लिया करते थे। उनकी वृत्ति प्राचीन ऋषियों की सी अञ्छूत वृत्ति थी। इसीलिए चाणक्य कौटल्य कहलाने लगा। उत्तर प्रदेश के पूर्व जिनमें तत्कालीन नेपाली की दक्षिण पश्चिम तराई और बिहार के पश्चिम इलाकों में कोठला या कुठला शब्द का प्रयोग अब भी प्रचलित है जिसका अर्थ अनाज भरने वाला मिट्टी का बड़ा भाण्ड होता है। इससे यह कहा जाता है, कि चाणक्य तथा तक्षशिला का नहीं बल्कि मध्यदेश का ही निवासी था। चाणक्य के स्वभाव, वृत्ति और आधरण का सब से बड़ा प्रमाण कौटलीय अर्थशास्त्रही है, मुद्राराक्षस नाटक में भी कुछ झलक है। कौटलीय अर्थशास्त्र बतलाता है, कि चाणक्यमहाधेधवी, सर्वशास्त्रवेत्ता, महान् तपस्वी, व्यापक व्यावहारिक ज्ञान सम्पन्न, समीक्ष्यकारी स्वाभिमानी, त्यागी, और राष्ट्र भक्त व्यक्ति था। उसे अपनी विद्वत्ता, बहुज्ञता, परिचयचारुता और राष्ट्रीयता तथा ब्राह्मण होने तक का अभिमान था। वह शुकना नहीं जानता था। वह और अपनी आर्य जाति को दलित, प्रतित, पराधीन देखना नहीं चाहता था। इसीलिए उसने घोषणा की थी नित्वेधार्य स्यदास भावः (आर्यजाति को हर्गिज नहीं गुलाम बनाया जा सकता)।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों का ऐतिहासिकवृत्त बहुत विवादास्पद इसलिए बन गया है, कि ये दोनों महापुरुष एक युगसन्धि में पैदा हुए और दोनों ने मिलकर एक युग क्रान्ति उत्पन्न कर नया संसार बनाया। हमें यह कहना पड़ता है, कि यूनान के प्राचीन इतिहासकारों और भारतीय धर्माचार्यों और राजनीतिज्ञों ने इन दोनों के साथ उपेक्षा का अर्थ रखा है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य देश की पूर्ण स्वाधीनता के उपासक थे, यूनानी आक्रमणों को विफल बनाने उनके विजित प्रदेशों को छीनने से यूनानियों ने इनका तिरस्कार किया तो बोद्धों और जैनियों ने ब्राह्मण धर्म के पुनरु-

द्वारक इन दोनों को हिकारत की निगाह से देखा। ब्राह्मणधर्म के परवर्त्ती आचार्यों और लेखकों ने मौर्यवंश और चाणक्य की उपेक्षा इसलिए की कि इसी वंश में उत्पन्न अशोक ने ब्राह्मण धर्म को दबाकर बौद्धधर्म को स्टेटरिलीजन घोषित किया, जिसका परिणाम चाणक्य और चन्द्रगुप्त हक में बुराई आ बौद्धग्रन्थों ने तो अशोक की भूरि-भूरि प्रशंसा की किन्तु इन दोनों की सच्चा उपेक्षा की। चाणक्य के परवर्त्ती भाष्यकारों, काव्यकारों नीतिकारों ने भी इनका मजाक उड़ाया या इनकी खुलकर निन्दा की। महाभाष्यकार पतंजलि, जैसा नीर-क्षीर-विवेकी विद्वान भी इस द्वेष्यभाव से रिवत नहीं रहा। महाभाष्य में जेयो वृषलः (वृषल जीतने योग्य था) और मौर्य हिरण्य लोभी थे कहकर मौर्य-वंश एवं चाणक्य की अवहेलना की है। चाणक्य चन्द्रगुप्त को धर्मत्मा धत्रिय के बोधक वृषल शब्द से सम्बोधित करता था जिसका अर्थ परवर्त्ती ग्रन्थकार जो ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे वृषल का अर्थ शुद्रा से उत्पन्न पतित या ब्राह्मण लगाने लग गए परिणाम यह हुआ कि देवागाँ प्रियः (अशोक का विशेषण) का अर्थ भी मूर्ख लगा लिया गया। इस प्रकार साम्प्रदायिक विद्वेष्य और पक्षपात पूर्णराजनीतिक दृष्टिकोण ने भारतवर्ष के एक जाज्वल्यमान युवक और उसके निर्माता को निवृष्ट साबित करने का अपराध किया है। भारतीय सकीर्ण प्रवृत्तियों और अपनी संकुचित, पक्षपात पूर्ण नीति से पाश्चात्य इतिहासकारों ने भी इनके संबंध में मनमानी कल्पनाएँ जोड़ी हैं। जिनका अन्धानुकरण प्रायः भारतीय इतिहासकारों ने किया है।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त विश्वइतिहास के ध्रुव हैं जिनकी सत्ता शाश्वत और अदीप्त रहेगी — यह हमारा विश्वास है।

सहायक ग्रन्थ

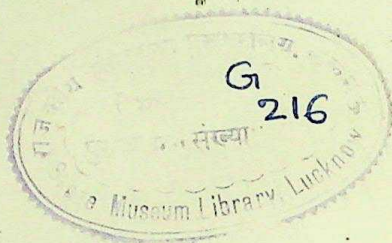
- | | |
|-----------------------------|--------------------------|
| १—कौटलीय अर्थशास्त्र— | १९—ऋग्भाष्य |
| उदयवीर शास्त्री | २०—मस्करी भाष्य |
| २—कौटलीय अर्थशास्त्र—प्राण- | २१—गौतम स्मृति भाष्य |
| नाथ विद्यालंकार | २१—वाजसेनेयी प्रातिशाख्य |
| ३—कौटलीय अर्थशास्त्र—शाम | २२—अष्टाध्यायी (पाणिनि) |
| शास्त्री | २३—सिद्धान्त कौमुदी |
| ४—कौटलीय अर्थशास्त्र — | २४—वामन काशिका वृत्ति |
| देवदत्त शास्त्री | २५—शाकटायन वृत्ति |
| ५—आपस्तम्ब धर्मसूत्र | २६—छान्दोग्य उपनिषद् |
| ६—बौधायन धर्मसूत्र | २७—अथर्व संहिता |
| ७—श्रौतसूत्र | २८—नारद संहिता |
| ८—वैतानसूत्र | २९—ऋगसंहिता |
| ९—गृह्यसूत्र | ३०—वाजसेनेयी संहिता |
| १०—कौशिक सूत्र | ३१—बृहत्संहिता |
| ११—कल्पसूत्र | ३२—तैत्तरीय आरण्यक |
| १२—काम सूत्र | ३३—ऐतरेय ब्राह्मण |
| १३—चाणक्य सूत्र | ३४—शतपथ ब्राह्मण |
| १४—मस्करी सूत्र | ३५—ताण्ड्य ब्राह्मण |
| १५—बार्हस्पत्यम् | ३६—जैमिनीय ब्राह्मण |
| १६—पाताञ्जल महाभाष्य | ३७—ऋग्वेद |
| १७—न्याय भाष्य | ३८—तैत्तरीय ब्राह्मण |
| १८—वात्स्यायन भाष्य | ३९—यजुर्वेद |

(१०३)

- ४०—अथर्ववेद
 ४१—अथर्ववेद परिशिष्ट
 ४२—याज्ञवल्क्य स्मृति
 ४३—याज्ञवल्क्य चरित
 ४४—मनु स्मृति
 ४५—त्रायुपुराण
 ४६—मत्स्य पुराण
 ४७—ब्रह्माण्ड पुराण
 ४८—भविष्य पुराण
 ४९—विष्णु पुराण
 ५०—मार्कण्डेय पुराण
 ५१—स्कन्द पुराण
 ५२—श्रीमद्भागवत् पुराण
 ५३—गरुड पुराण
 ५४—महाभारत
 ५५—देवीभागवत
 ५६—कामन्दक नीतिसार
 ५७—नीतिवाक्यामृत-सोमदेव सूरि
 ५८—सूक्ति मुक्तावली (जल्हण
 कृत
 ५९—सदुक्ति कर्णामृत
 ६०—सुभाषित मुक्तावली
 ६१—ज्योतिर्विदा भारण
 —(कालिदास
 ६२—साशवली (कल्याण वर्मा)
 ६३—खण्डखाद्यक (ब्रह्म गुप्त)
 ६४—पंचतंत्र
 ६५—बृहत्कथा
 ६६—कथासरित्सागर
 ६७—नाममाला (भौजराज)
 ६८—अवन्ति सुन्दरी कथा
 ६९—मुद्राराक्षस नाटक
 ७०—प्रतिज्ञा योगन्धरायण नाटक
 ७१—स्वप्न वासवदत्ता नाटक
 ७२—अभिषेक नाटक
 ७३—चतुर्मारिणी
 ७४—अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक
 ७५—कौमुदी महोत्सव नाटक
 ७६—रघुवंश
 ७७—मञ्जुश्रीकल्प
 ७८—विनय पिटक
 ७९—महावंश
 ८०—प्रतिज्ञा परिशिष्ट
 ८१—परिशिष्ट पर्व
 ८२—लिंगानुशासनं
 ८३—होरास्त (वलभद्र मिश्र)
 ८४—बौद्ध पर्वतीय वंशावली
 ८५—कृष्ण चरित (सम्राट् समुद्र
 गुप्त कृत; गोंडल से
 प्रकाशित)
 ८६—दशकुमार चरित
 ८७—कादम्बरी
 ८८—हर्षचरित
 ८९—विश्वकोश

(१०४)

- ९०—विश्वप्रकाश कोश
 ९१—वैजयन्ती कोश
 ९२—हेमचन्द्र कोश
 ९३—मेदिनी कोश
 ९५—त्रिकाण्ड शेष कोश
 ९६—राजवल्लभनिघण्टु
 ९७—कैयदेव निघण्टु
 ९८—धन्वन्तरि निघण्टु
 ९९—द्रव्य रत्नाकर
 १०१—शक्तिसंगमत्र
 १०२—शब्द कल्पद्रुम
 १०३—पुष्पोत्तम कोश
 १०४—विन्सेन्टस्मिथ की अर्ली
 हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आवसफोर्ड
 १०५—भारतीय पुरातत्त्व सर्वे—
 भारत सरकार
 १०६—कामाङ्किल व्याख्यान
 १०७—टैगोर व्याख्यान—कलकत्ता
 यूनिवर्सिटी
 १०८—गायककड ओरियण्टल सिरीज
 १०९—भारत भूमि और उसके
 निवासी—जयचन्द्र विद्यालंकार
 ११०—भारतीय इतिहास की रूपरेखा
 १११—भारतवर्ष का इतिहास—
 भगवद्दत्त वी० ए०
 ११२—प्राचीन भारत का राज-
 नैतिक इतिहास—हेमचन्द्रराय चौधरी
 ११३—हिन्दू संस्तर—डा०
 काशीप्रसाद जायसवाल
 ११४—राजस्थान का इतिहास—
 टाडहंटर
 ११५—मौर्य साम्राज्य का इति-
 हास सत्यकेतु विद्यालंकार
 ११६—महाभारत मीमांसा—
 माधवराव सत्रे
 ११७—मेमस्थनीज का भारतवर्षीय
 वर्णन—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
 ११८—कौटिल्य—ए० सी०
 बन्धोपाध्याय
 ११९—हिन्दू पोलिटिकल थियरी-
 घोषाल
 १२०—अलवर खज्य पुस्तकालय
 का कैटलॉग
 १२१—जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री
 १२२—अलबेरूनी का भारत
 १२३—कोशोत्सव स्मारक संग्रह
 १२४—भारतीय अनुशीलन
 १२५—वैदिक सम्पत्ति
 १२६—हिन्दुत्व



मूल्य २) रु०